कहानी
एकादशी

कहानी एकादशी

मूल्य : पच्चीस रुपये (Rs. 25.00)
संस्करण 2004 © प्रकाशक
ISBN : 81-7483-032-4
KAHANI EKADASHI (Short Stories) edited by Dr. Dashrath Ojha
शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली-6

कहानी एकादशी

संपादक
डॉ. दशरथ ओझा

शिक्षा भारती, कश्मीरी गेट, दिल्ली

भूमिका

आधुनिक कहानी 19वीं शताब्दी की देन है। 19वीं शताब्दी भारतीय चेतना के रिनेसां (पुनर्जागरण) की शताब्दी मानी जाती है, जब देश पाश्चात्य ज्ञान-दर्शन, शिक्षा-सभ्यता के आलोक में अंगड़ाई लेने लगा था। परन्तु आधुनिक हिन्दी-कहानी का आरम्भ 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही होता है। यद्यपि 19वीं शताब्दी में ही प्राचीन कथाओं से थोड़ा हटकर लल्लूलाल कृत 'प्रेमसागर' (1803), इंशाअल्ला खाँ कृत 'रानी केतकी की कहानी' (1798-1803 के बीच) आदि कहानियाँ नया रूप लेकर प्रकाश में आ चुकी थीं। इनमें 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की प्रथम कहानी होने का गौरव भी मिला। आगे चलकर, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' की 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दुजी की कहानी 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' भी विशेष उल्लेखनीय हैं। परन्तु विषय और भाषा-शैली की दृष्टि से इस कथा-साहित्य को हम प्राचीन कथा-साहित्य का कुछ संशोधित रूप ही मान सकते हैं। वास्तव में आधुनिक हिन्दी-कहानी का श्रीगणेश 'सरस्वती' (1902), 'हिन्दी-प्रदीप' (1900), 'छत्तीसगढ़-मित्र' (1900), 'सुदर्शन' आदि हिन्दी पत्रिकाओं के माध्यम से होता है।

अभी तक हिन्दी की मौलिक कहानी श्री किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती', जो सन् 1902 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी, मानी जाती थी। कुछ विद्वान पं. रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903) और कुछ 'बंग महिला' की 'दुलाईवाली' (1907) कहानी को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते रहे हैं, किन्तु अब हिन्दी शोध-अनुसंधान के द्वारा यह

प्रमाणित हो गया है कि पं. माधवराव सप्रे कृत 'एक टोकरी-भर मिट्टी' ही हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी है। इस कहानी का प्रकाशन सन् 1901 में 'छत्तीसगढ़-मित्र' में हुआ था। इस कहानी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक सामान्य विषय को लेखक ने कहानी के तत्त्वों की उपयुक्त संगति में बैठाकर बड़ी रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है, जो पिछली समस्त कहानियों से अपनी विशिष्ट मौलिकता लिए है। सन् 1909 में ही श्री वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबन्द भाई', मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' नामक कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इसके अनन्तर साहित्य-जगत् में 'इन्दु' पत्रिका का प्रकाशन (1910-1911) हुआ जिसमें 'प्रसाद' की प्रथम कहानी 'ग्राम' (1911) प्रकाशित हुई। इसी समय 'भारतमित्र' में पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'सुखमय जीवन' (1911) प्रकाशित हुई। इसी समय सियारामशरण गुप्त की महत्त्वपूर्ण कहानी 'मुण्डमाला' (1911) का प्रकाशन हुआ।

परन्तु हिन्दी कहानी ने प्रौढ़ता का कदम उठाया पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' के द्वारा। यह समय सन् 1915-16 का था। प्रेमचन्दजी की 'सौत' और 'पंच-परमेश्वर' और विश्वम्भरनाथ जिज्जा की 'विदीर्ण हृदय' का भी प्रकाशन इसी काल में हुआ। कहानी-विकास की दृष्टि से इन कहानियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त पं. सुदर्शन की 'कमल की बेटी' और 'संसार का सबसे बड़ा आदमी' का प्रकाशन हुआ। इस युग के अन्य कहानीकार, जिन्होंने कहानी को वर्ण्य विषय एवं शिल्प की दृष्टि से प्रौढ़ता की ओर बढ़ाया है, वे हैं सर्वश्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राधिकारमण प्रसाद सिंह, रायकृष्णदास, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गोपालराम गहमरी आदि। देखा जाए तो सन् 1900-1911 तक का काल हिन्दी-कहानी का निर्माण-काल था। इस समय कहानी प्राचीनता के आवरण से मुक्त होकर नई शैली और नई जीवन-दृष्टि पाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देती है। सन् 1911 से वह अपने विकास-मार्ग पर तेज़ी से बढ़ती दिखलाई देती है।

सन् 1921-22 के पूर्व की कहानियाँ, जो द्विवेदी-युग की उपज थीं, प्रायः घटना-प्रधान, आदर्शमूलक एवं सोद्देश्यता-प्रधान कहानियाँ हैं, जिनमें कहीं यथार्थोन्मुख आदर्शवादी चेतना के दर्शन होते हैं तो कहीं कतिपय

मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के। शैली की दृष्टि से भी इनमें अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस समय पाश्चात्य साहित्य का भी प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से हिन्दी कथा-साहित्य पर पड़ने लगा था। दूसरे, देश की पराधीनता और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की विषमताओं ने भी इस युग की कहानी की आत्मा को जगाने और उसके कलेवर को नया रूप देने का सफल प्रयास किया है। श्री प्रेमचन्द की कहानियाँ इस तथ्य की प्रमाण हैं जिनके द्वारा हमने अपने राष्ट्रीय और सामाजिक यथार्थ जीवन को खुली आँखों से देखने का अभ्यास किया। वास्तव में यह सुधारवाद का युग था। प्रेमचन्द और उनके समकलीन लेखकों ने सर्वप्रथम इस सुधारवाद को व्यक्त किया था अतः प्रेमचन्द जनता के एकमात्र प्रतिनिधि कहानीकार बन गए।

सन् 1921 से 1937 तक का काल हिन्दी-कहानी का उत्थान काल है। इस काल में कहानी की विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं। भावों की गहराई के साथ कल्पना की ऊँची उड़ान भरकर इस युग की कहानी एक ओर जहाँ भाव-प्रधान बनी, वहीं वह कला की ऊँची-ऊँची चोटियों का भी स्पर्श करने लगी। प्रसादजी की कहानियाँ—'आकाशदीप', 'ममता', 'बिसाती', 'आँधी', 'दासी', 'पुरस्कार' आदि भाव एवं कला की श्रेष्ठ मणियाँ ही हैं। दूसरी ओर जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक पकड़ एवं दार्शनिक सूझ ने कहानी को मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक धरातल देकर वैयक्तिकता की ओर मोड़ा। उनकी कहानी की प्रमुख विशेषता 'आधुनिकता' है—आलोचनात्मक बुद्धि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बल पर कहानियों में व्यक्तित्व की स्थापना सुन्दर रूप से होने लगी। बंगला साहित्य के प्रभाव ने भी हिन्दी-कहानी के सुर-ताल को काफी हद तक प्रभावित किया। सर्वश्री बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र, ताराशंकर वन्द्योपाध्याय आदि बँगला के प्रतिनिधि कथाकार विशेष उल्लेखनीय हैं जिनका प्रभाव इस युग की कहानी पर पड़ा है।

सन् 1922 में श्री बेचन शर्मा 'उग्र' ने कहानी-जगत में प्रवेश कर उसे एक नई क्रांति की भूमिका दी। राजनीतिक आन्दोलन, वेश्या और विधवा-जीवन, सामाजिक विकृतियाँ आदि को कहानी का विषय बनाते हुए

उन्होंने भाषा-शैली के सर्वत्र नए प्रयोग किए। प्रसादजी की भावात्मक एवं कल्पना-प्रधान कहानियों के नए मापदण्ड स्वीकार कर चलने वाले कहानीकारों में आचार्य चतुरसेन, रायकृष्णदास, विनोदशंकर व्यास आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक और पारिवारिक जीवन की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत करने वाले कहानीकारों में कौशिकजी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, चण्डीप्रसाद हृदयेश आदि के नाम लिये जाते हैं।

इस प्रकार सन् 1937 तक हिन्दी-कहानी का प्रतिनिधित्व प्रेमचन्दजी और प्रसादजी ने बड़ी कुशलता के साथ किया किन्तु सन् 37 के बाद कहानी विशुद्ध समाजवादी चेतना से प्रभावित होकर भाव एवं कल्पना के मोहक स्तरों से उतरकर जन-जीवन के ठोस धरातल पर चलने लगी। देश में मार्क्सवादी और फ्रायडवादी प्रवृत्तियों के गहन प्रभाव के कारण सन् 30 के बाद से ही कहानी प्रगतिशीलता और वैयक्तिकता की ओर मुड़ने लगी थी। प्रगतिवादी कहानी ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज और सामूहिकता को महत्त्व दिया और पूँजीवादी सभ्यता के विरुद्ध वर्ग-संघर्ष का नारा लगाया। वर्गवादी सामाजिक चेतना के प्रबल समर्थक कहानीकारों में सर्वश्री यशपाल, नागार्जुन, मन्मथनाथ गुप्त, अमृतराय, रांगेय राघव, हंसराज रहबर आदि के नाम आते हैं। दूसरी ओर जैनेन्द्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, सियारामशरण गुप्त, अमृतलाल नागर, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विष्णु प्रभाकर, आंचलिक कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु आदि ने प्रेमचन्द की परम्परा को मानवतावादी आधार देकर आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

आगे द्वितीय महायुद्ध की विभीषकाओं, राष्ट्रीय आन्दोलन की क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि और मार्क्स और फ्रायड-युग की 'वाद-सम्पन्न' चेतना के परिणामस्वरूप एक अलग व्यक्ति-चरित्र को विशुद्ध मनोवैज्ञानिक भूमिका में चित्रित करने का प्रयास किया गया। फलतः मानसिक संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व, घुटन-पीड़ा, यौन सम्बन्ध, अहं और विद्रोह आदि की परिणति अज्ञेय की कहानियों में हुई। श्री इलाचन्द्र जोशी, पहाड़ी, धर्मवीर भारती आदि कहानीकारों के नाम इस चेतना के प्रबल पोषक के रूप में लिए जाते हैं।

नई कहानी–स्वतन्त्रता के 8-9 वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् 1956 के

आस-पास हिन्दी-कहानी 'नई कहानी' के नाम से पहचानी जाने लगी। स्वतन्त्रता के साथ ही देश में नव निर्माण के परिप्रेक्ष्य में नव वैचारिक क्रांति का जन्म हुआ। परतन्त्रता-काल में गढ़े गए जीवन और साहित्य के आदर्शों के पुनर्मूल्यांकन की ओर देश के नए विचारक और लेखक बढ़ने लगे। स्वतन्त्रता के बाद ही देश का विभाजन और विभाजन के परिणामस्वरूप 'हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई' के गाँधीवादी नारों को गाँधी के प्राणों सहित रक्त-धारा में बहा देने के प्रयास और इसके फलस्वरूप आए राजनीतिक और सामाजिक जीवन-स्तर के विघटन, इसी भूमि में नई कहानी का बीजांकुरित हुआ। सन् 1955-56 तक आते-आते नई कविता के बाद नई कहानी की चर्चा ज़ोर पकड़ने लगी। कहानी की इस नई लहर को 'कहानी', 'कल्पना', 'धर्मयुग', 'ज्ञानोदय', 'लहर' आदि पत्रिकाओं और विभिन्न कथागोष्ठियों ने विशेष प्रश्रय दिया। सन् 1960-61 तक आते-आते कहानी 'नई' के रूप में पूरी तरह प्रतिष्ठित हो गई। इसके प्रवर्तकों में सर्वश्री मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव के नाम विशेष रूप से लिए जाते हैं।

इन प्रवर्तकों ने नई कहानी को पिछले जीवन-मूल्यों या आदर्शों से काटकर बड़ी तीखी संत्रासमयी भूमि प्रदान की। यांत्रिक जीवन के ऊपर से ओढ़े थोथे, खंडित आदर्श, परायेपन और अकेलेपन की व्यक्तिवादी घुटन, परम्पराओं से विद्रोह, वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था के प्रति उफनता तीव्र आक्रोश (जिसे 'नपुंसक आक्रोश' की भी संज्ञा दी गई), भूख, आतंक और सेक्स का तनाव आदि मनोवृत्तियाँ ही नई कहानी के प्रमुख स्वर बनीं। नई कहानी के एक प्रवक्ता कमलेश्वर ने 'नई कहानी की भूमिका' प्रस्तुत करते हुए लिखा है : ''एक शानदार अतीत कुत्ते की मौत मर रहा है, उसी में से फूटता हुआ एक विलक्षण वर्तमान रू-ब-रू खड़ा है—अनाम अरक्षित, आदिम अवस्था में। और आदिम अवस्था में खड़ा यह मनुष्य अपनी भाषा चाहता है, कविता और कला चाहता है, मूल्य और संस्कार चाहता है, अपनी मानसिक और भौतिक दुनिया चाहता है।'' इस नई कलम के समर्थकों में सर्वश्री भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, मार्कण्डेय, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवप्रसाद सिंह, अमरकान्त, नरेश मेहता, रेणु, उमाकान्त, शैलेश

मटियानी, शानी, कृष्ण बलदेव वैद आदि के नाम प्रमुख रूप से लिए जाते हैं। महिला कहानीकारों में मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा, शिवानी आदि प्रमुख हैं। व्यंग्य कथाकारों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, नरेन्द्र कोहली आदि के नाम प्रमुख हैं।

सन् 1960 के बाद इस 'नई कहानी' ने एक दूसरी ही करवट ली। अब 'नई कहानी' के नाम पर 'साठोत्तरी कहानी' का नाम सुनाई पड़ने लगा। यों तो 'नई कहानी' पहले ही दावा कर चुकी थी कि अब उसका आशय 'चरित्र-निर्माण' करने का नहीं रहा बल्कि अपने 'घटित' को महसूस कर उसे भोगने की कहानी हो गया है। सन् 60 के बाद 'नई कहानी' का अकेलापन कहीं अधिक तिक्त, अधिक असहाय, अधिक अरक्षित बनकर नंगा हो गया। सर्वश्री दूधनाथ सिंह, कामतानाथ, काशीनाथ सिंह, मनहर चौहान, श्रीकान्त वर्मा, ज्ञानरंजन, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया की कहानियों में अपनी 'आइडेण्टिटी' की तलाश के अनेक आयाम खूबी के साथ उभरे। 'अकेलेपन' की कसक भोगती हुई बुद्धिजीवी पीढ़ी अपने कामों में, घर-परिवारों में, साथियों-सहगामियों में, प्रेमी-प्रेमिकाओं में—अकेलापन ढोते-ढोते स्वयं से भी पराई हो गई। इस सम्बन्ध में मोहन राकेश की 'एक ठहरा हुआ चाकू', ज्ञानरंजन की 'दिलचस्पी', दूधनाथ की 'रक्तपात', गंगाप्रसाद विमल की 'एक और विदाई' कहानियाँ 'आइडेण्टिटी' की तलाश की कहानियाँ हैं, वहीं रवीन्द्र कालिया की 'डरी हुई औरत', श्रीकान्त वर्मा की 'सेक्स', काशीनाथ की 'आखिरी रात' सेक्स की स्वच्छन्दता में भी एक अजनबीपन का बोध देनेवाली कहानियाँ सिद्ध होती हैं।

सन् 64-65 के आसपास एक और नया नाम कहानी की पृष्ठभूमि पर सुनाई पड़ने लगा—'सचेतन कहानी' और फिर सन् 68 के बाद सबको नकारती हुई अ-कविता के साथ अ-कहानी का शोर सुनाई पड़ने लगा। ऐसा माना जाता है कि पश्चिम की 'एण्टी-स्टोरी' से प्रभावित होकर ही अ-कहानी का जन्म हुआ है। यद्यपि 'अ-कहानी' का दर्द भी नई कहानी के दर्द से अलग नहीं है, केवल उसका नामकरण नया है। अ-कहानी के प्रबल पोशाक डॉ. गंगाप्रसाद विमल के शब्दों में : "अ-कहानी की धारणा प्रतीति से अलग एक अ-स्थापित कथाधारा है जो कहानी के सभी वर्गीकरणों,

मूल्यांकन के आधारों और कहानी की पूर्व-समीक्षाओं को अस्वीकार करती है।—इसका प्रमुख कारण यह है कि 'अ-कहानी' (और अन्य विधाएँ भी) किसी तरह के 'मूल्यों' की रक्षा करती हुई नहीं चलती। उसके लिए पुराने मूल्यों का टूटना भी कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। यही नहीं, वह नए मूल्यों की स्थापना को भी स्वीकार नहीं करती।'' इस प्रकार इस कथा-आदर्श ने एक नया संकट साहित्य-जगत् में उत्पन्न कर दिया। सहृदय के संस्कार बने वे महिमामय पात्र, वह सौन्दर्य, वह आदर्श, वह पावन प्रेम—सबकी बखिया उधेड़ने वाली अ-कहानी का यह दावा है कि अ-कहानी बीसवीं शताब्दी के अभिशप्त मानव की निर्मम कथाएँ हैं, वह मानव विश्वास की आदर्श कहानी नहीं, बल्कि मनुष्य-मस्तिष्क के भीषण संकट-बोध की यथार्थ प्रतीति की कहानी है, वह सिर्फ 'यथार्थ-भोग है'। भविष्य ही इस दावे की सच्चाई और उसकी प्रामाणिकता को सिद्ध करेगा। अ-कहानी के पक्षधर भी वे ही हैं जिन्होंने 'नई कहानी में आइडेण्टिटी' की तलाश का नारा लगाया था। कुछ और कहानीकार यथा डॉ. गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, ममता अग्रवाल, महेन्द्र भल्ला आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। फिर भी इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा कि 'साठोत्तरी' कहानी ने लेखक के लेखन को अधिक ईमानदार और खरा बनाकर कथा और शिल्प में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला दिए हैं।

—संपादक

अनुक्रम

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (सन् 1883-1922 ई.)–*गुलेरीजी केवल तीन कहानियाँ 'सुखमय जीवन', 'बुद्धि का काँटा' और 'उसने कहा था' लिखकर अमर हो गए। इनमें 'उसने कहा था' कहानी कथ्य और शिल्प की दृष्टि से हिन्दी की श्रेष्ठ मौलिक कहानी मानी जाती है। प्रेमचन्द-युग की सुधारवादी मनोभूमि पर गुलेरीजी की इस कहानी ने कहानी को विकास की नई दिशा की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी है। पवित्र प्रेम, आत्मत्याग, देश-प्रेम और बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करते हुए इस युग की चरित्र-प्रधान कहानियों का यह श्रेष्ठ उदाहरण तो है ही, साथ ही सूक्ष्म चरित्र-चित्रण, कथा-प्रवाह, देश-काल और वातावरण की संगति, भावानुगामी, पात्रानुकूल भाषा, व्यंग्य-विनोद के पुट के साथ आदर्श और यथार्थ का समन्वय इस कहानी की प्रमुख विशेषताएँ हैं। यद्यपि गुलेरीजी कथाकार की अपेक्षा बहुभाषा-विद्, प्रकाण्ड पण्डित एवं पुरातत्त्ववेत्ता अधिक थे, फिर भी उनका कहानीकार पाण्डित्य से मुक्त रहा है, इसलिए उनकी कहानियों में आकर्षण, कुतूहल और मनोरम वातावरण बराबर बना रहा।*

उसने कहा था

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर

के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की उँगलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग, चक्करदार गलियों में, हरएक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी', 'हटो माईजी', 'ठहरना भाई', 'आने दो लालाजी', 'हटो बाछा', कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं की उनकी जीभ चलती ही नहीं, पर मीठी छुरी की तरह मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं–'हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमाँ वालिए, हटा जा पुत्ताँ प्यारिये, बच जा लम्बी उमराँ वालिए।' समष्टि में इनके अर्थ हैं कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिए के नीचे आना चाहती है ?–बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुँथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

"तेरे घर कहाँ है ?"

"मगरे में–और तेरे ?"

"माझे में–यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं।"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरू बाज़ार में है।"

इतने में दुकानदार निबटा और इनको सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—"तेरी कुड़माई हो गई ?"

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्ज़ी वाले के यहाँ, दूध वाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई ?" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—"हाँ, हो गई।"

"कब ?"

"कल, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू ?"

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में धकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

2

"राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खन्दकों में बैठे-बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दीखता नहीं—घण्टे दो घण्टे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का ज़लज़ला सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।"

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिए।

परसों 'रिलीफ' आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में। मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, पर दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।"

"चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन के गोले फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो..."

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों ?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा ?"

"सूबेदारजी, सच है," लहनासिंह बोला—"पर करें क्या ? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाए तो गर्मी आ जाए।"

"उदमी, उठ, सिगड़ी में कोयले डाल। वजीरा, तुम चार जने बाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाज़े का पहरा बदला दे।" यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगा।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाँधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण।" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी

बाड़ी के खरबूज़ों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाव ज़मीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम..."

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।"

"देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिक्ख तम्बाकू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, होंठों में लगाना चाहती है। और मैं पीछे हटता हूँ, तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।"

"अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख़्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिंह ने त्यौरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने-मरने की बात लगाई है ? मरे जर्मन और तुरक। हाँ भाइयो, कुछ गाओ !"

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले, घरबारी सिक्ख अश्लील गीत गाएँगे, पर सारी खन्दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताज़े हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

3

दो पहर रात गई। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह

के दो कम्बल और एक बरान कोट ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

"क्यों बोधा भाई, क्या है ?"

"पानी पिला दो।"

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—"कहो कैसे हो ?"

पानी पीकर बोधा बोला—"कम्पनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम ?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है, पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए..."

"हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो ?"

"और नहीं झूठ ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई—"सूबेदार हजारासिंह !"

"कौन, लपटन साहब ? हुकुम हुजूर !" कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

--देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील-भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा, तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबदोर ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा– "लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला–"लाओ साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए ?

शायद शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है। लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेण्ट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे ?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसन्द नहीं ?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मज़े यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम-आप जगाधरी ज़िले में शिकार करने गए थे"– "हाँ-हाँ"–"वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था।"–"बेशक पाजी कहीं का"–"सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मज़ा आता है। क्यों साहब ! शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रजिमेण्ट की मैस में लगाएँगे।"–"हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया।"–"ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे ?"

"हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे; तुमने सिगरेट नहीं पिया ?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ—" कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

"कौन ? वजीरासिंह ?"

"हाँ, क्यों लहना ? क्या कयामत आ गई ?" ज़रा तो आँख लगने दो होती।"

4

"होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहनकर कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू, और मुझे पीने को सिगरेट दिया है।"

"तो अब ?"

"अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पलटन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ। खन्दक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।"

"हुकुम तो यह है कि यहीं..."

"ऐसी-तैसी हुकुम की। मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है—उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिक्ख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने...

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कोहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आख ! मीन गौट्ट'[1] कहते हुए चित हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब, मिज़ाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं—यह सीखा कि सिक्ख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के ज़िले में नीलगाएँ होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आए ? हमारे लपटन साहब तो बिना डैम के पाँच लफ्ज़ भी नहीं बोल सकते थे।"

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचाने के लिए दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो, पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है; उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों के बच्चे होने के तावीज़ बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी

---

1. हाय मेरे राम (जर्मन)

के बड़ के नीचे मंजा बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मनी वाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जाएँगे तो गौ-हत्या बन्द कर देंगे। मण्डी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपया निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाकबाबू पौल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूड़ दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो...''

साहब की जेब से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया—''क्या है ?''

लहनासिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि ''एक हड़का हुआ कुत्ता आया था। मार दिया।''—और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधीं। घाव माँस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तककर मार रहा था—वह खड़ा था, और-और लेटे हुए थे।) और वे थे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े-से-मिनटों में वे...

अचानक आवाज़ आई—''वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !'' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—''अकाली सिक्खाँ दी फौज आई ! वाह गुरुजी की फतह। वाह गुरुजी का खालसा !! सतश्री अकाल पुरूख !!!'' और

लड़ाई खत्म हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्‌टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव–भारी घाव–लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसे कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती है। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन, और कागज़ात पाकर, उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँचीं। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्‌टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाए और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही, पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जावेगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देखकर लहना ने कहा–"तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास ही है।"

"अच्छा, पर..."

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो,

सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।''

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—''तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना, उसने क्या कहा था ?''

''अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना और कह भी देना।''

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया।—''वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।''

5

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्ज़ी वाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा—'हाँ, कल हो गई। देखते नहीं यह रेशमी बूटों वाला सालू।' सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

''वीजरासिंह पानी पिला दे।''

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं. 77 राइफल्स में जमादार हो गया। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमैण्ट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए

हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था, और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला–'लहना ! सूबेदारनी तुमको जानती है, बुलाती है। जा, मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कब से ? रेजिमैण्ट के क्वार्टरों में कभी सूबेदारनी के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई–धत्–कल हो गई–देखते नहीं, रेशमी बूटों वाला सालू–अमृतसर में...'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली, पसली का घाव बह निकला।

''वजीरा, पानी पिला...'' 'उसने कहा था।...

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है–'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों[1] की एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भरती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी। 'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग। तुम्हें याद है, एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

1. स्त्रियों

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता बाहर आया।

"वजीरासिंह पानी पिला–" 'उसने कहा था...

लहना का सिर गोद में रखे वजीरासिंह बैठा था। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा फिर बोला–"कौन? कीरतसिंह?"

वजीरा ने कुछ समझकर कहा–"हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट[1] पर मेरा सिर रख ले।"

वजीरा ने वैसा ही किया।

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस अब के हाड़[2] में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना तो यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।"

वजीरासिंह के आँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिनों पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा–फ्राँस और बेल्जियम, 68वीं सूची–मैदान में घावों से मरा–नं. 77 सिख राइफल्स, जमादार लहनासिंह।

---

1. जांघ 2. आषाढ़

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द (सन् 1880-1936 ई.)–हिन्दी कथा साहित्य में युगान्तर लाने का श्रेय प्रेमचन्दजी को है। सर्वप्रथम हिन्दी-कहानी को सामाजिक एवं पारिवारिक भूमि प्रदान कर, इन्होंने कहानी विधा को कहीं अधिक मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक, सरस और मार्मिक बनाया। पिसता हुआ मध्यम-वर्ग और शोषित किसान की घुटन, विपन्नता और असमर्थता आपकी अनेक कहानियों के प्रमुख विषय हैं। सामाजिक और कौटुम्बिक समस्याओं की ओर विशेष रूप से आपका ध्यान केंद्रित रहने के कारण सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक आडम्बर, पाखंड गरीबी और शोषण की विकरालता ने एक ओर उन्हें सुधारवादी बना दिया तो दूसरी ओर यथार्थवादी भी। दूसरे शब्दों में अपने चरित्र-चित्रण तथा कथा-वस्तु में वे यथार्थवादी हैं किन्तु दृष्टिकोण में पूरे आदर्शवादी। यही कारण है कि वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी परम्परा के प्रतीक बन गए। उनकी कहानियों की सबसे बड़ी मौलिकता उनकी भावाभिव्यंजना और शैली है, जिसके कारण वे नगर और ग्राम्य जीवन का जीता-जागता चित्रण सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिकता के साथ प्रस्तुत करने में अद्वितीय रूप से सफल हो सके।

'पंच परमेश्वर', 'राजा हरदौल', 'मन्दिर और मस्जिद', 'सुजान भगत', 'बूढ़ी काकी', 'बड़े घर की बेटी', 'मन्त्र', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'पूस की रात', 'कफन' आदि कहानियाँ चरित्र और वातावरण की दृष्टि से उनकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। आपने लगभग 250 कहानियाँ और अनेक उपन्यास लिखे हैं।

'ईद का त्योहार' लेखक की वह प्रसिद्ध कहानी है जिसमें समाज के मध्य में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बच्चों के द्वारा समाज के गठन का वर्णन एक गरीब बच्चे के द्वारा उसका मातृत्व प्रेम दिखाकर उसकी बुद्धि की प्रखरता को दिखाया है। इस कहानी में शिशु-मनोविज्ञान की सुन्दर झलक दिखलाई गई है।

ईद का त्योहार

रमज़ान के तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है। पड़ोस के घर में सुई-तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं, उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी-जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दें। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जाएगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोज़े बड़े-बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो ईद है। रोज ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी पड़ी है कि लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन ! सैवेयों के लिए दूध और शक्कर घर में है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवैयाँ खाएँगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायमअली के घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आँखें बदल लें, यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार-बार जेब से अपना खजाना निकालकर गिनते हैं और खुश होकर

फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक-दो, दस-बारह। उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास एक, दो, तीन आठ, नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इन्हीं अनगिनती पैसों में अनगिनती चीजें लाएँगे—खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और न जाने क्या-क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार-पाँच साल का गरीब-सूरत, दुबला-पतला लड़का, जिसका बाप गत-वर्ष हैजे की भेंट हो गया और माँ न जाने क्यों पीली होती-होती एक दिन मर गई। किसी को पता न चला, क्या बीमारी है। कहती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ बीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सहा गया तो संसार से विदा हो गई। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गए हैं। बहुत-सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें लाने गई हैं; इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज है, और फिर बच्चों की आशा ! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं है, सिर पर एक पुरानी-धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और अम्मीजान नियामतें लेकर आएँगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं ! आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती। इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही थी। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं है, लेकिन हामिद ! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब ? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल-बल लेकर आए, हामिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्माँ, मैं सबसे पहले जाऊँगा। बिलकुल न डरना !

अमीना का दिल कचोट रहा है। गाँव के बच्चे अपने-अपने बाप के साथ जा रहे हैं, हामिद का बाप अमीना के सिवा और कौन है ? उसे

कैसे अकले मेले जाने दे। उस भीड़-भाड़ में बच्चा कहीं खो जाए तो क्या हो। नहीं, अमीना उसे यों न जाने देगी। नन्हीं-सी जान ! तीन कोस चलेगा कैसे ! पैर में छाले पड़ जाएँगे। जूते भी तो नहीं हैं। वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसे गोद ले लेगी; लेकिन यहाँ सेवैयाँ कौन पकाएगा ? पैसे होते तो लौटते-लौटते सब सामग्री जमा करके चटपट बना लेती। यहाँ तो घण्टों चीजें जमा करते लगेंगे। माँगे ही का तो भरोसा ठहरा। उस दिन फहीमन के कपड़े सिए थे। आठ आने पैसे मिले थे। उस अठन्नी को ईमान की तरह बचाती चली आती थी इसी ईद के लिए, लेकिन कल ग्वालन सिर पर सवार हो गई तो क्या करती। हामिद के लिए कुछ नहीं है, तो दो पैसे का दूध तो चाहिए ही। अब तो कुल दो आने पैसे बच रहे हैं। तीन पैसे हामिद की जेब में, पाँच अमीना के बटवे में। यही तो बिसात है और ईद का त्यौहार ! अल्लाह ही बेड़ा पार लगावे। धोबन और नाइन और मेहतरानी और चूड़िहारिन सभी तो आएँगी। सभी को सेवैयाँ चाहिए और थोड़ा किसी की आँखों नहीं लगता। किस-किस से मुँह चुराएगी और मुँह क्यों चुराए ? साल भर का त्यौहार है। जिन्दगी खैरियत से रहे, उनकी तकदीर भी तो उसी के साथ है। बच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जाएँगे।

गाँव से मेला चला। और बच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सबके सब दौड़कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इन्तजार करते। ये लोग क्यों इतना धीरे-धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है ! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चार-दीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियाँ लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठा कर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहाँ से एक फलांग पर हैं। खूब हँस रहे हैं। माली को कैसे उल्लू बनाया है।

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं; यह अदालत है, यह कालेज है, यह क्लब-घर है। इतने बड़े कालेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे ? सब लड़के नहीं जी ! बड़े-बड़े आदमी हैं, सच ! उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। इतने बड़े

हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर ! हामिद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिल्कुल तीन कौड़ी के, रोज मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे और क्या। क्लब-घर में जादू होता है। सुना है, यहाँ मुरदे की खोपड़ियाँ दौड़ती हैं। और बड़े-बड़े तमाशे होते हैं, पर किसी को अन्दर नहीं जाने देते। और यहाँ शाम को सहाब लोग खेलते हैं। बड़े-बड़े आदमी खेलते हैं, मूँछों-दाढ़ी वाले। और मेमें खेलती हैं, सच ! हमारी अम्माँ को वह दे दो, क्या नाम है, बैट, तो उसे पकड़ ही न सकें। घुमाते ही लुढ़क न जाएँ।

महमूद ने कहा—हमारी अम्मीजान का तो हाथ काँपने लगे, अल्ला कसम।

मोहसिन बोला—अम्मी मनों आटा पीस डालती हैं। ज़रा-सा बैट पकड़ लेंगी, तो हाथ काँपने लगे। सैकड़ों घड़े पानी रोज निकालती हैं। पाँच घड़े तो तेरी भैंस पी जाती है। किसी मेम को एक घड़ा पानी भरना पड़े तो आँखें तले अँधेरा आ जाए।

महमूद—लेकिन दौड़ती तो नहीं, उछल-कूद तो नहीं सकतीं !

मोहसिन—हाँ उछल-कूद नहीं सकतीं; लेकिन उस दिन मेरी गाय खुल गई थी और चौधरी के खेत में जा पड़ी थी, तो अम्माँ इतनी तेज़ दौड़ी कि मैं उन्हें न पा सका, सच !

आगे चले। यह पुलिस लाइन है। यहीं सब कानिसटिबल कवायद करते हैं। रात को बेचारे घूम-घूम कर पहरा देते हैं, नहीं चोरियाँ हो जाएँ। मोहसिन ने प्रतिवाद किया—यह कानिसटिबल पहरा देते हैं ? तब तुम बहुत जानते हो। अभी हजरत, यही चोरी कराते हैं। शहर के जितने चोर-डाकू हैं सब इनसे मिले रहते हैं। रात को ये लोग चोरों से तो कहते हैं, चोरी करो और आप दूसरे मुहल्ले में जाकर 'जागते रहो ! जागते रहो !' पुकारते हैं। अभी इन लोगों के पास इतने रुपए आते हैं। मेरे मामू एक थाने में कानिसटिबल हैं। बीस रुपया महीना पाते हैं; लेकिन पचास रुपए घर भेजते हैं। अल्ला कसम ! मैंने एक बार पूछा था कि मामू, आप इतने रुपए कहाँ से पाते हैं ? हँसकर कहने लगे—बेटा, अल्लाह देता है। फिर आप ही

बोले—हम लोग चाहें तो एक दिन में लाखों मार लाएँ। हम तो इतना ही लेते हैं, जिसमें अपनी बदनामी न हो और नौकरी न चली जाए।

हामिद ने पूछा, यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हें पकड़ता नहीं ?

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हें कौन पकड़ेगा। पकड़ने वाले तो यह खुद हैं; लेकिन अल्लाह इन्हें सजा भी खूब देता है। हराम का माल हराम में जाता है। थोड़े ही दिन हुए, मामू के घर में आग लग गई। सारी लेई-पूँजी जल गई। एक बरतन तक न बचा। कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे। फिर न जाने कहाँ से एक सौ रुपया कर्ज लाए तो बरतन-भाड़े आए।

हामिद-एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं ?

'कहाँ पचास कहाँ एक सौ। पचास एक थैली-भर होता है। सौ तो दो थैलियों में भी न आवें।'

अब बस्ती घनी होने लगी है। ईदगाह जाने वालों की टोलियाँ नजर आने लगीं। एक-से-एक भड़कीले वस्त्र पहने हुए। कोई इक्के-ताँगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग। ग्रामीणों का यह छोटा-सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था। बच्चों के लिए नगर की सभी चीजें अनोखी थीं। जिस चीज की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते। और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज होने पर भी न चेतते ! हामिद तो मोटर के नीचे जाते-जाते बचा।

सहसा ईदगाह नजर आया। ऊपर इमली के घने वृक्षों की छाया। नीचे पक्का फर्श है, जिस पर जाजिम बिछा हुआ है। और रोज़दारों की पंक्तियाँ एक के पीछे एक न जाने कहाँ तक चली गयी हैं, पक्के जगत के नीचे तक, जहाँ जाजिम भी नहीं है। नए आने वाले आकर पीछे की कतार में खड़े हो जाते हैं। आगे जगह नहीं है। यहाँ कोई धन और पद नहीं देखता। इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं। इन ग्रामीणों ने भी बजू किया और पिछली पंक्ति में खड़े हो गए। कितना सुन्दर संचालन है, कितनी सुन्दर व्यवस्था ! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं, फिर सब-के-सब एक साथ खड़े हो जाते हैं, एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के

बल बैठ जाते हैं। कई बार यही क्रिया होती है, जैसे बिजली की लाखों बत्तियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाएँ, और यही क्रम चलता रहे। कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनन्तता हृदय को श्रद्धा, गर्व और आत्मानन्द से भर देती थी, मानो भ्रातृत्व का एक सूत्र इन समस्त आत्माओं को एक लड़ी में पिरोये हुए है।

नमाज़ खत्म हो गई है। लोग आपस में गले मिल रहे हैं। तब मिठाई और खिलौनों की दुकानों पर धावा होता है। ग्रामीणों का यह दल इस विषय में बालकों से कम उत्साही नहीं है। यह देखो, हिंडोला है। एक पैसा देकर चढ़ जाओ। कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी जमीन पर गिरते हुए। यह चर्खी है, लकड़ी के हाथी, घोड़े, ऊँट छड़ों से लटके हुए हैं। एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्करों का मजा लो। महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊँटों पर बैठते हैं। हामिद दूर खड़ा है। तीन ही पैसे तो उसके पास हैं। अपने कोष का तिहाई ज़रा-सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता।

सब चर्खियों से उतरते हैं। अब खिलौने लेंगे। इधर दुकानों की कतार लगी हुई है। तरह-तरह के खिलौने हैं–सिपाही और गुजरिया, राजा और वकील, भिश्ती और धोबिन और साधू। वाह ! कितने सुन्दर खिलौने हैं। अब बोलना ही चाहते हैं। महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ीवाला, कन्धे पर बन्दूक रखे हुए। मालूम होता है, अभी कवायद किए चला आ रहा है। मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया। कमर झुकी है, ऊपर मशक रखे हुए है। मशक का मुँह एक हाथ से पकड़े हुए है। कितना प्रसन्न है। शायद कोई गीत गा रहा है। बस, मशक से पानी उंडेलना ही चाहता है। नूरे को वकील से प्रेम है। कैसी विद्वत्ता है उसके मुख पर ! काला चोगा, नीचे सफेद अचकन, अचकन के सामने की जेब में घड़ी, सुनहरी जंजीर, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए। मालूम होता है, अभी किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। यह सब दो-दो पैसे के खिलौने हैं हामिद के पास कुल तीन पैसे हैं, इतने महँगे खिलौने वह कैसे ले ? खिलौना कहीं हाथ से छूट पड़े, तो चूर-चूर हो जाए। ज़रा पानी पड़े तो सारा रंग धुल जाए। ऐसे खिलौने लेकर वह क्या करेगा,

किस काम के !

मोहसिन—मेरा भिश्ती रोज पानी दे जाएगा; साँझ-सवेरे !

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा। कोई चोर आवेगा, तो फौरन बन्दूक से फैर कर देगा !

नूर—और मेरा वकील खूब मुकदमा लड़ेगा।

सम्मी—और मेरी धोबिन रोज कपड़े धोएगी।

हामिद खिलौने की निन्दा करता है—मिट्टी ही के तो हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जाएँ। लेकिन ललचाई हुई आँखों से खिलौनों को देख रहा है और चाहता है कि ज़रा देर के लिए उन्हें हाथ में ले सकता। उसके हाथ अनायास ही लपकते हैं; लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेषकर जब अभी नया शौक हो। हामिद ललचाता रह जाता है।

खिलौने के बाद मिठाइयाँ आती हैं। किसी ने रेवड़ियाँ ली हैं, किसी ने गुलाबजामुन, किसी ने सोहनहलुआ। मजे से खा रहे हैं। हामिद उनकी बिरादरी से पृथक है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता ? ललचाई आँखों से सबकी ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद, रेवड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है।

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है; लेकिन यह जानकर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेवड़ी निकाल कर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेवड़ी अपने मुँह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियाँ बजा-बजाकर हँसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा, अबकी जरूर देंगे हामिद, अल्ला कसम, ले जाओ।

हामिद—रखे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं ?

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे ?

महमूद—हमसे गुलाबजामुन ले जाओ हामिद। मोहसिन बदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताब में इसकी कितनी बुराइयाँ लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होगे कि मिले तो खा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?

महमूद—हम समझते हैं इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएँगे, तो हमें ललचा-ललचाकर खाएगा।

मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीजों की हैं। कुछ गिलट और नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है। कई चिमटे रखे हुए थे। उसे खयाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती हैं, तो हाथ जल जाता है; अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होंगी ? फिर उनकी उँगलियाँ कभी न जलेंगी। घर में एक काम की चीज हो जाएगी। खिलौने से क्या फायदा ! व्यर्थ मैं पैसे खराब होते हैं। ज़रा देर ही तो खुशी होती है। फिर तो खिलौनों को कोई आँख उठा कर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते-पहुँचते टूट-फूट बराबर हो जाएँगे, या छोटे बच्चे जो मेले में नहीं आए हैं, जिद करके ले लेंगे और तोड़ डालेंगे। चिमटा कितने काम की चीज है। रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेक लो। कोई आग माँगने आवे तो चटपट चूल्हे से आग निकालकर उसे दे दो। अम्माँ बेचारी को कहाँ फुर्सत है कि बाजार आएँ, और इतने पैसे ही कहाँ मिलते हैं। रोज हाथ जला लेती हैं। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं। सबील पर सब-के-सब शर्बत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं, इतनी मिठाइयाँ लीं, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं, मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा, तो पूछूँगा। खाएँ मिठाइयाँ, आप मुँह सड़ेगा, फोड़े-फुन्सियाँ निकलेंगी, आप ही जबान चटोरी हो जाएगी। तब घर के पैसे चुराएँगे और मार खाएँगे। किताब में झूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी जबान क्यों खराब होगी। अम्माँ चिमटा देखते ही दौड़कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेंगी—मेरा बच्चा अम्माँ के लिए चिमटा लाया है ! हजारों दुआएँ देगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखाएँगी। सारे गाँव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौने पर कौन दुआएँ देगा। बड़ों की दुआएँ सीधे अल्लाह के दरबार में पहुँचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिजाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिजाज दिखाऊँगा।

खेलें खिलौने और खाएँ मिठाइयाँ । मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिजाज क्यों सहूँ। मैं गरीब सही, किसी से कुछ माँगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी-न-कभी आएँगे। अम्मा भी आएँगी ही। फिर इन लोगों से पूछूगाँ, कितने खिलौने लोगे ? एक-एक को टोकरियों खिलौने दूँ और दिखा दूँ कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है। यह नहीं कि एक पैसे की रेवड़ियाँ लीं तो चिढ़ा-चिढ़ाकर खाने लगे। सब-के-सब खूब हँसेंगे कि हामिद ने चिमटा लिया है। हँसे मेरी बला से। उसने दुकानदार से पूछा—यह चिमटा कितने का है ?

दुकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी साथ न देखकर कहा—यह तुम्हारे काम का नहीं है जी !

'बिकाऊ है कि नहीं ?'

'बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाए हैं ?'

''तो बताते क्यों नहीं, कै पैसे का है ?'

'छै पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल बैठ गया।

'ठीक-ठीक बताओ ?'

'ठीक-ठीक पाँच पैसे लगेंगे, लेना हो लो, नहीं चलते बनो।'

हामिद ने कलेजा मजबूत करके कहा—तीन पैसे लोगे ?

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दुकानदार की घुड़कियाँ न सुने। लेकिन दुकानदार ने घुड़कियाँ नहीं दी। बुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह कन्धे पर रखा, मानो बन्दूक है और शान से अकड़ता हुआ साथियों के पास आया। ज़रा सुनें, सब-के-सब क्या-क्या आलोचनाएँ करते हैं।

मोहसिन ने हँसकर कहा—यह चिमटा क्यों लाया पगले ? इसे क्या करेगा ?

हामिद ने चिमटे को जमीन में पटक कर कहा—ज़रा अपना भिश्ती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियाँ चूर-चूर हो जाएँ बच्चा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद-खिलौना क्यों नहीं ? अभी कन्धे पर रखा, बन्दूक हो गई। हाथ

में लिया, फकीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूँ। एक चिमटा जमा दूँ तो तुम लोगों के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, वे मेरे चिमटे का बाल भी बाँका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खंजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खंजरी से बदलोगे ? दो आने की है।

हामिद ने खंजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खंजरी का पेट फाड़ डाले। बस, एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब-ढब बोलने लगी। ज़रा-सा पानी लग जाए तो खत्म हो जाए। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, तूफान में, बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सभी को मोहित कर लिया; लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं ! फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कब के बज गए, धूप तेज हो रही है। घर पहुँचने की जल्दी हो रही है। बाप से जिद भी करें, तो चिमटा नहीं मिल सकता है। हामिद है बड़ा चालाक। इसीलिए बदमाश ने अपने पैसे बचा रखे थे !

अब बालकों के दो दल हो गए हैं मोहसिन, महमूद, सम्मी और नूरे एक तरफ हैं, हामिद अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा था। सम्मी तो विधर्मी हो गया। दूसरे पक्ष से जा मिला; लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भी, हामिद से एक-एक, दो-दो साल, बड़े होने पर भी हामिद के आघातों से आतंकित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बल है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है, दूसरी ओर लोहा, जो इस वक्त अपने को फौलाद कह रहा है। वह अजेय है, घातक है। अगर कोई शेर आ जाए, तो मियाँ भिश्ती के छक्के छूट जाएँ, मियाँ सिपाही मिट्टी की बन्दूक छोड़कर भागें, वकील साहब की नानी मर जाए, चोगे में मुँह छिपाकर जीमन पर लेट जाएँ। मगर यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे-हिन्द लपक कर शेर की गरदन पर सवार हो जाएगा और उसकी आँखें निकाल लेगा।

मोहसिन ने एड़ी-चोटी का जोर लगाकर कहा—अच्छा, पानी तो नहीं भर सकता।

हामिद ने चिमटे को सीधा खड़ा करके कहा—भिश्ती को एक डाँट

बताएगा, तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया; पर महमूद ने कुमक पहुँचाई—अगर बच्चा पकड़ जाएँ तो अदालत में बँधे-बँधे फिरेंगे। तब तो वकील साहब के ही पैरों पड़ेंगे।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका। उसने पूछा—हमें पकड़ने कौन आएगा ?

नूरे ने अकड़कर कहा—यह सिपाही बन्दूक वाला।

हामिद ने मुँह चिढ़ाकर कहा—यह बेचारे हम बहादुर रुस्तमे-हिन्द को पकड़ेंगे। अच्छा लाओ, अभी ज़रा कुश्ती हो जाए। इसकी सूरत देखकर दूर से भागेंगे। पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गयी—तुम्हारे चिमटे का मुँह रोज आग में जलेगा।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जाएगा; लेकिन यह बात न हुई। हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में बहादुर ही कूदते हैं जनाब, तुम्हारे यह वकील, सिपाही और भिश्ती लेड़ियों की तरह घर में घुँस जाएँगे। आग में कूदना वह काम है, जो रुस्तमे-हिन्द ही कर सकता है।

महमूद ने एक जोर लगाया—वकील साहब कुरसी-मेज पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बाबरची खाने में जमीन पर खड़ा रहेगा।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया। कितने ठिकाने की बात कही है पट्ठे ने। चिमटा बाबरचीखाने में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है।

हामिद को कोई फड़कता हुआ जवाब न सूझा तो उसने धाँधली शुरू की—मेरा चिमटा बाबरचीखाने में नहीं रहेगा। वकील साहब कुरसी पर बैठेंगे, तो जाकर उन्हें जमीन पर पटक देगा और उनका कानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ बनी नहीं। खासी गाली-गलौज थी; लेकिन कानून को पेट में डालने वाली बात छा गई। ऐसी छा गई कि तीनों शूरमा मुँह ताकते रह गए। मानो कोई धेलचा कनकौआ किसी गण्डे वाले कनकौए को काट गया हो। कानून मुँह से बाहर निकालने वाली चीज हो उसको पेट के अन्दर

डाल दिया जावे, बेतुकी-सी बात होने पर भी कुछ नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा रुस्तमे-हिन्द है। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नूरे, सम्मी किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती है।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलना स्वाभाविक है, वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन-तीन, चार-चार आने पैसे खर्च किए; पर कोई काम की चीज न ले सके। हामिद ने तीन पैसे में रंग जमा लिया। सच ही तो है, खिलौनों का क्या भरोसा ? टूट-फूट जाएँगे। हामिद का चिमटा बना रहेगा बरसों।

सन्धि की शर्त तय होने लगी। मोहसिन ने कहा—ज़रा अपना चिमटा दो, हम भी देखें। तुम हमारा भिश्ती लेकर देखो।

महमूद और नूरे ने भी अपने-अपने खिलौने पेश किए।

हामिद को इन शर्तों के मानने में कोई आपत्ति न थी। चिमटा बारी-बारी से सबके हाथ में गया; और उनके खिलौने बारी-बारी से हामिद के हाथ में आए। कितने खूबसूरत खिलौने हैं।

हामिद ने हारने वाले के आँसू पोंछे—मैं तुम्हें चिढ़ा रहा था, सच। यह लोहे का चिमटा भला इन खिलौनों की क्या बराबरी करेगा; मालूम होता है, अब बोले, अब बोले।

लेकिन मोहसिन की पार्टी को इस दिलासे से सन्तोष नहीं होता। चिमटे का सिक्का खूब बैठ गया है। चिपका हुआ टिकट अब पानी से नहीं छूट रहा है।

मोहसिन—लेकिन इन खिलौनों के लिए कोई हमें दुआ तो न देगा।

महमूद—दुआ को लिए फिरते हो। उल्टे मार न पड़े। अम्माँ जरूर कहेंगी कि मेले में मिट्टी के खिलौने ही तुम्हें मिले ?

हामिद को स्वीकार करना पड़ा कि खिलौनों को देखकर किसी की माँ इतनी खुश न होंगी, जितनी मेरी दादी चिमटे को देखकर होंगी। तीन पैसों ही में तो उसे सब कुछ करना था, और उन पैसों के उस उपयोग पर पछतावे की बिलकुल जरूरत न थी। फिर अब तो चिमटा रुस्तमे-हिन्द है और सभी खिलौनों का बादशाह।

रास्ते में महमूद को भूख लगी। उसके बाप ने केले खाने को दिए।

महमूद ने केवल हामिद को साझी बनाया। उसके अन्य मित्र मुँह ताकते रहे गए। यह उस चिमटे का प्रसाद था।

ग्यारह बजे सारे गाँव में हलचल मच गई। मेले वाले आ गए। मोहसिन की छोटी बहन ने दौड़कर भिश्ती उसके हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली, तो मिया भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भाई-बहन में मारपीट हुई। दोनों खूब रोए। उनकी अम्माँ यह शोर सुनकर बिगड़ी और दोनों को ऊपर से दो-दो चांटे और लगाए।

मियाँ नूरे के वकील का अन्त उसके प्रतिष्ठानुकूल उससे ज्यादा गौरवमय हुआ। वकील जमीन पर या ताक पर तो नहीं बैठ सकता। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो खूटियाँ गाड़ी गईं। उन पर लकड़ी का एक पटरा रखा गया। पटरे पर कागज का कालीन बिछाया गया। वकील साहब राजा भोज की भाँति सिंहासन पर विराजे। नूरे ने उन्हें पंखा झलना शुरू किया। अदालतों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे रहते हैं। क्या यहाँ मामूली पंखा भी न हो। कानून की गर्मी दिमाग पर चढ़ जाएगी, की नहीं। बाँस का पंखा आया और नूरे हवा करने लगे। मालूम नहीं, पंखे की हवा से या पंखे की चोट से वकील साहब स्वर्गलोक से मृत्युलोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया ! फिर बड़े जोर-जोर से मातम हुआ और वकील साहब की अस्थि घूरे पर डाल दी गईं।

अब रहा महमूद का सिपाही। उसे चटपट गाँव का पहरा देने का चार्ज मिल गया; लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो था नहीं; जो अपने पैरों चले। वह पालकी पर चलेगा। एक टोकरी आई, उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने चिथड़े बिछाए गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेटे। नूरे ने यह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे। उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोने बाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं। मगर रात तो अँधेरी ही होनी चाहिए। महमूद को ठोकर लग जाती है। टोकरी उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है और मियाँ सिपाही अपनी बन्दूक लिए जमीन पर आ जाते हैं। और उनकी एक टाँग में विकार आ जाता है। महमूद को आज ज्ञात हुआ कि वह अच्छा डाक्टर है। उसको

ऐसा मरहम मिल गया है, जिससे वह टूटी टाँग को अनन-फानन जोड़ सकता है। केवल गूलर का दूध चाहिए। गूलर का दूध आता है, टाँग जोड़ दी जाती है; लेकिन सिपाही को ज्यों ही खड़ा किया जाता है, टाँग जवाब दे देती है। शल्य-क्रिया असफल हुई, तब उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ दी जाती है। अब कम-से-कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टाँग से तो न चल सकता था न बैठ सकता था। अब वह सिपाही संन्यासी हो गया है। अपनी जगह पर बैठा-बैठा पहरा देता है। कभी-कभी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार साफा खुरच दिया गया है। अब उसका जितना रूपान्तर चाहो, कर सकते हो। कभी-कभी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मियाँ हामिद का हाल सुनिए। अमीना उसकी आवाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठाकर प्यार करने लगी। सहसा उसके हाथ में चिमटा देखकर वह चौंकी।

'यह चिमटा कहाँ था ?'

'मैंने मोल लिया है।'

'कै पैसे दिए।'

'तीन पैसे दिए।'

अमीना ने छाती पीट ली। यह कैसा बेसमझ लड़का है कि दोपहर हुआ, न कुछ खाया, न पिया। लाया क्या यह चिमटा ! सारे मेले में तुझे और कोई चीज न मिली, जो यह लोहे का चिमटा उठा लाया ?

हामिद ने अपराधी भाव से कहा--तुम्हारी उँगलियाँ तवे से जल जाती थीं; इसलिए मैंने इसे ले लिया।

बुढ़िया का क्रोध तुरन्त स्नेह में बदल गया, और स्नेह भी वह नहीं, जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक शब्दों में बिखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ था। बच्चे में कितना त्याग, कितना सद्भाव और कितना विवेक है ! दूसरों को खिलौने लेते और मिठाई खाते देखकर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना जब्त इससे हुआ कैसे ? वहाँ भी उसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चे हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता।

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (सन् 1890-1937 ई.)–प्रेमचन्दजी जहाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रहे, वहाँ प्रसादजी भावमूलक परम्परा के अधिष्ठाता सिद्ध हुए। वास्तव में इन दो महान साहित्यकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से कहानी के विकास को अलग-अलग गति दी है। प्रसादजी भारतीय संस्कृति, इतिहास, दर्शन और पुरातत्त्व-प्रेमी थे। अतएव, उनकी कहानियों में प्रेमचन्द की कहानियों का यथार्थ खुलकर उभर नहीं पाया, उसके स्थान पर प्रेम, करुणा, त्याग और बलिदान से युक्त भावमूलक आदर्श ही अभिव्यक्ति हुआ है जिसका सीधा सम्बन्ध लेखक के हृदय से है, मस्तिष्क से नहीं। मनोभावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, चरित्र-विकास, मनोहर कल्पना, वातावरण की सुन्दर सृष्टि, सुसंस्कृत कवित्वपूर्ण भाषा उनकी कृतियों की विशेषताएँ हैं। भाव की सुरसरिता बहाते-बहाते प्रसादजी की कथावस्तु राष्ट्र और समाज के सीमाभाव का अतिक्रमण कर विश्वबन्धुत्व के प्रांगण तक पहुँचती है–'सहयोग', 'गुदड़ी के लाल', 'अघोरी का मोह', 'विराम चिह्न' आदि इसी कोटि की कहानियाँ हैं। घटना प्रधान एवं वातावरण-प्रधान कहानियों में भी आपने सर्वाधिक सफलता अर्जित की है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'समुद्र-संतरण' वातावरण-प्रधान कहानियों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं, 'मधुआ', 'घीसू', 'नीरा', 'इन्द्रजाल', 'सलीम', 'छोटा जादूगर' आदि कहानियाँ घटना-प्रधान हैं।

'छोटा जादूगर' बाल्य जीवन की एक ऐसी कहानी है जिसमें आर्थिक विपन्नता से ग्रसित एक 'स्ट्रीट बॉय' के चरित्र को

आदर्शात्मक रूप से उभारा गया है। बालक की चतुराई, मधुर व्यंवहार, क्रियाकौशल और मातृ-भक्ति देखकर सहृदय मन द्रवित हुए बिना नहीं रहता ।

छोटा जादूगर

कार्निवल के मैदान में बिजली जगमगा रही थी। हँसी और विनोद का कलनाद गूँज रहा था। मैं खड़ा था, उस छोटे फुहारे के पास, जहाँ एक लड़का चुपचाप शरबत पीने वालों को देख रहा था। उसके गले में फटे कुरते के ऊपर एक मोटी-सी सूत की रस्सी पड़ी थी और जेब में कुछ ताश के पत्ते थे। उसके मुँह पर गम्भीर विषाद के साथ धैर्य की रेखा थी। मैं उसकी ओर न जाने क्यों आकर्षित हुआ। उसके अभाव में भी सम्पूर्णता थी। मैंने पूछा—"क्यों जी, तुमने इसमें क्या देखा ?"

"मैंने सब देखा। यहाँ चूड़ी फेंकते हैं। खिलौने पर निशाना लगाते हैं। तीर से नम्बर छेदते हैं। मुझे तो खिलौने पर निशाना लगाना अच्छा मालूम हुआ। जादूगर तो बिलकुल निकम्मा है। उससे अच्छा तो ताश का खेल मैं दिखा सकता हूँ।"—उसने बड़ी प्रगल्भता से कहा। उसकी वाणी में कहीं रुकावट न थी।

मैंने पूछा—"और उस परदे में क्या है ? वहाँ तुम गए थे ?"

"नहीं, वहाँ मैं नहीं जा सकता। टिकट लगता है।"

मैंने कहा—"तो चला मैं वहाँ पर, तुमको लिवा चलूँ।" मैंने मन ही मन कहा—'भाई! आज के तुम्हीं मित्र रहे।'

उसने कहा—"वहाँ जाकर क्या कीजिएगा ? चलिए निशाना लगाया जाए।"

मैंने उससे सहमत होकर कहा—"तो फिर चलो, पहले शरबत पी लिया जाए।" उसने स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया।

मनुष्यों की भीड़ से जाड़े की संध्या भी वहाँ गर्म हो रही थी। हम दोनों शरबत पीकर निशाना लगाने चले। राह में ही उससे पूछा—"तुम्हारे

और कौन है ?''

''माँ और बाबूजी।''

''उन्होंने तुमको यहाँ आने के लिए मना नहीं किया ?''

''बाबूजी जेल में है।''

''क्यों ?''

''देश के लिए।''–वह गर्व से बोला।

''और तुम्हारी माँ ?''

''वह बीमार है।''

''और तुम तमाशा देख रहे हो ?''

उसके मुँह पर तिरस्कार की हँसी फूट पड़ी। उसने कहा–''तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर आपने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे अधिक प्रसन्नता होती।''

मैं आश्चर्य से उस तेरह-चौदह वर्ष के लड़के को देखने लगा।

''हाँ, मैं सच कहता हूँ बाबूजी। माँजी बीमार है; इसलिए मैं नहीं गया।''

''कहाँ ?''

''जेल में। जब कुछ लोग खेल-तमाशा देखते ही हैं, तो मैं क्यों न दिखाकर माँ की दवा-दारू करूँ और अपना पेट भरूँ !''

मैंने दीर्घ निःश्वास लिया। चारों ओर बिजली के लट्टू नाच रहे थे। मन व्यग्र हो उठा। मैंने उससे कहा–''अच्छा चलो, निशाना लगाया जाए।''

हम दोनों उस जगह पर पहुँचे, जहाँ खिलौने को गेंद से गिराया जाता था। मैंने बारह टिकट खरीदकर उस लड़के को दिए।

वह निकला पक्का निशानेबाज़ ! उसका कोई गेंद खाली नहीं गया। देखने वाले दंग रह गए। उसने बारह खिलौनों को बटोर लिया; लेकिन उठाता कैसे ? कुछ मेरे रूमाल में बाँधे, कुछ जेब में रख लिए।

लड़के ने कहा–''बाबूजी, आपको तमाशा दिखाऊँगा। बाहर आइए। मैं चलता हूँ।'' वह नौ-दो ग्यारह हो गया। मैंने मन ही मन कहा–'इतनी जल्दी आँख बदल गई।'

मैं घूमकर पान की दुकान पर आ गया। पान खाकर बड़ी देर तक

इधर-उधर टहलता रहा। झूले के पास लोगों का ऊपर-नीचे आना देखने लगा। अकस्मात् किसी ने ऊपर के हिंडोले से पुकारा—"बाबूजी !"

मैंने पूछा—"कौन ?"

"मैं हूँ छोटा जादूगर।"

कलकत्ता के सुरम्य बोटानिकल-उद्यान में लाल कमलिनी से भरी हुई एक छोटी-सी झील के किनारे घने वृक्षों की छाया में अपनी मण्डली के साथ बैठा हुआ मैं जलपान कर रहा था। बातें हो रही थीं। इतने में वही छोटा जादूगर दिखाई पड़ा। हाथ में चारखाने की खादी का झोला। साफ जाँघिया। और आधी बाँहों का कुरता। फिर पर मेरा रूमाल सूत की रस्सी से बँधा हुआ था। मस्तानी चाल से झूमता हुआ आकर कहने लगा—

"बाबूजी नमस्ते। आज कहिए तो खेल दिखाऊँ ?"

"नहीं जी, अभी हम लोग जलपान कर रहे हैं।"

"फिर इसके बाद क्या गाना-बजाना होगा, बाबूजी ?"

"नहीं जी...तुमको..." क्रोध से कुछ कहने जा रहा था। श्रीमती ने कहा—"दिखलाओ जी, तुम तो अच्छे आए। भला कुछ मन तो बहले।" मैं चुप हो गया, क्योंकि श्रीमती की वाणी में वह माँ की सी मिठास थी, जिसके सामने किसी भी लड़के को रोका नहीं जा सकता। उसने खेल आरम्भ किया।

उस दिन कार्निवल के सब खिलौने उसके खेल में अपना अभिनय करने लगे। भालू मनाने लगा। बिल्ली रूठने लगी। बन्दर घुड़कने लगा।

गुड़िया का ब्याह हुआ। गुड्डा वर काना निकला। लड़के की वाचालता से ही अभिनय हो रहा था। सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

मैं सोच रहा था। बालक को आवश्यकता ने कितने शीघ्र चतुर बना दिया। यही तो संसार है।

ताश के सब पत्ते लाल हो गए। फिर सब काले हो गए। गले की सूत की डोरी टुकड़े-टुकड़े होकर जुड़ गई। लट्टू अपने-आप नाच रहे थे। मैंने कहा—"अब हो चुका। अपना खेल बटोर लो, हम लोग भी अब जाएँगे।"

श्रीमती ने धीरे से उसे एक रुपया दे दिया। वह उछल उठा। मैंने कहा—"लड़के !"

"छोटा जादूगर कहिए। यही मेरा नाम है। इसीसे मेरी जीविका है।"

मैं कुछ बोलना ही चाहता था, कि श्रीमती ने कहा—"अच्छा तुम इस रुपए से क्या करोगे ?"

"पहले भर पेट पकौड़ी खाऊँगा। फिर एक सूती कम्बल लूँगा।"

मेरा क्रोध अब लौट आया। मैं अपने पर बहुत क्रुद्ध होकर सोचने लगा—'ओह ! कितना स्वार्थी हूँ ! मैं उसके एक रुपए पाने पर ईर्ष्या करने लगा था न।'

वह नमस्कार करके चला गया। हम लोग लता-कुंज देखने के लिए चले।

उस छोटे-से बनावटी जंगल में संध्या साँय-साँय करने लगी थी। अस्ताचलगामी सूर्य की अन्तिम किरण वृक्षों की पत्तियों से विदाई ले रही थी। एकदम शान्त वातावरण था। हम लोग धीरे-धीरे मोटर से हवड़ा की ओर आ रहे थे।

रह-रहकर छोटा जादूगर स्मरण होता था। सचमुच वह एक झोंपड़ी के पास कम्बल कन्धे पर डाले खड़ा था। मैंने मोटर रोककर उससे पूछा—"तुम यहाँ कहाँ ?"

"मेरी माँ यहीं है न। अब उसे अस्पताल वालों ने निकाल दिया है।"

मैं उतर गया। उस झोंपड़ी में देखा, तो एक स्त्री चिथड़ों से लदी हुई काँप रही थी।

छोटे जादूगर ने कम्बल ऊपर से डालकर उसके शरीर से चिमटते हुए कहा—"माँ !"

मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े।

बड़े दिन की छुट्टी बीत चली थी। मुझे अपने आफिस में समय से पहुँचना था। कलकत्ता से मन ऊब गया था। फिर भी चलते-चलते एक बार उद्यान को देखने की इच्छा हुई। साथ-ही-साथ जादूगर भी दिखाई पड़ जाता, तो और भी...मैं उस दिन अकेले ही चल पड़ा। जल्द लौट आना था।

दस बज चुका था। मैंने देखा, कि उस निर्मल धूप में सड़क के किनारे एक कपड़े पर छोटे जादूगर का रंगमंच सजा था। मोटर रोककर उतर पड़ा। वहाँ बिल्ली रूठ रही थी। भालू मनाने चला था। ब्याह की तैयारी थी; यह सब होते हुए भी जादूगर की वाणी में वह प्रसन्नता की तरी नहीं थी। जब वह औरों को हँसाने की चेष्टा कर रहा था, तब वह जैसे स्वयं कँप जाता था। मानो उसके रोएँ रो रहे थे। मैं आश्चर्य से देख रहा था। खेल हो जाने पर पैसा बटोरकर उसने भीड़ में मुझे देखा। वह जैसे क्षण-भर के लिए स्फूर्तिमान हो गया। मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछा—"आज तुम्हारा खेल जमा क्यों नहीं ?"

"माँ ने कहा है, कि आज तुरन्त चले आना। मेरी घड़ी समीप है।"—अविचल भाव से उसने कहा।

"तब भी तुम खेल दिखलाने चले आए है ?" मैंने कुछ क्रोध से कहा। मनुष्य के सुख-दुःख का माप अपना ही साधन तो है। उसी के अनुपात से वह तुलना करता है।

उसके मुँह पर वही परिचित तिरस्कार की रेखा फूट पड़ी।

उसने कहा—"न क्यों आता ?"

और कुछ अधिक कहने में जैसे वह अपमान का अनुभव कर रहा था।

क्षण-भर में मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। उसके झोले को गाड़ी में फेंककर उसे भी बैठाते हुए मैंने कहा—"जल्दी चलो।" मोटर वाला मेरे बताए हुए पथ पर चल पड़ा।

कुछ ही मिनटों में मैं झोंपड़े के पास पहुँचा। जादूगर दौड़कर झोंपड़े में माँ-माँ पुकारते हुए घुसा। मैं भी पीछे था; किन्तु स्त्री के मुँह से "बे..." निकलकर रह गया। उसके दुर्बल हाथ उठकर गिर गए। जादूगर उससे लिपटा रो रहा था, मैं स्तब्ध था। उस उज्ज्वल धूप में समग्र संसार जैसे जादू-सा मेरे चारों ओर नृत्य करने लगा।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार (सन् 1905-1988 ई.)–जैनेन्द्रजी के आगमन से हिन्दी-कहानी में मनोवैज्ञानिकता का पक्ष विशेष रूप से सबल बन गया। जैनेन्द्र जी की प्रथम कहानी 'खेल' 1928 में 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई। 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'दो चिड़ियाँ', 'स्पर्द्धा', 'ध्रुव-यात्रा', 'पाजेब', 'फाँसी', 'जयसंधि' आदि आपके कहानी-संग्रह हैं। आपकी कहानी लिखने की शैली विशेष है। पाश्चात्य मनोविज्ञान के आधार पर सम्पूर्ण चित्र उपस्थित कर देना लेखक की सबसे बड़ी विशेषता है। दार्शनिकता के प्राबल्य के कारण आगे चलकर इनकी कहानियों में एक प्रकार की दुरूहता एवं बोझिलता आ गई। फिर भी जहाँ वे दार्शनिक उलझनों से मुक्त होते हैं वहाँ मानसिक स्थितियों एवं चरित्र की अन्तरंग विशेषताओं का मनोहारी चित्र खींचने में अधिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं। वास्तव में, हिन्दी-कथा में मानसिक तथ्यों की व्यंजना की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने का श्रेय जैनेन्द्र जी को ही है।

'पढ़ाई' कहानी बाल्य मनोविज्ञान के आधार पर लिखी गई है, जिसमें लड़की की पढ़ाई-लिखाई की समस्या पर एक परिवार के अन्तरंग भावों का खूबी के साथ चित्रण किया गया है। बड़े लोग अपने बच्चों के मनोभावों का अध्ययन न कर, उन पर अपने विचारों को ही थोपने का प्रयास करते हैं तथा कहा न मानने वाले बच्चों को देते हैं प्रताड़ना, जिससे बाल्य मन के विकास में एक अवरोध पैदा हो जाता है। यही इस कहानी का

मूल प्रतिपाद्य है जो पाठकों को चिन्तन करने के लिए बाध्य कर देता है।

पढ़ाई

यह सुनयना जाने कितने बरस की हो जाने पर ठीक-ठीक सुनयना बनेगी ? अभी तो दिन-भर नूनो ही बनी रहकर ऊधम मचाती डोलती रहती है। जब दो बरस की थी, मैंने गोद में बिठाकर पूछा—"बिट्टी, तेरा नाम क्या है ?"

बिट्टी ने कहा—"ऊँ—ई।"

बिट्टी की बुआ ने कहा—"नूनो। हाँ, बिट्टो, फिर कहना नूनो।"

और बिट्टी ने फिर कहा—"ऊँ—ई।"

हम सब हँस पड़े, उसने झट दोनों हाथ लपकाकर मेरी दाढ़ी पकड़ ली, कहा—"आ-ऊँ-ऊँ-ई।"

तब तो यह सब कुछ ठीक था। पर, अब चार बरस और गुज़र गए हैं, छः बरस से भी ऊपर की हो गई है। अब पुराना वह सब कुछ नहीं निभ सकेगा। उमर आ गई है कि अब अदब सीखे, कहना माने और शऊर से रहे। और, वह शऊर जानती नहीं। छः बरस की लड़कियाँ दूसरी जमात तक पहुँच जाती हैं और एक यह है कि माँ का दूध नहीं छोड़ना चाहती। यों काम में माँ को अगूँठा दिखाकर भाग जाती है। माँ इससे बड़ी असन्तुष्ट है—एक तो लड़की है, वह यों बिगड़ी जा रही है। बिगड़ जाएगी तो फिर कौन सँभालेगा, उन्हीं के सिर तो सब पड़ेगा। सो, वह भी औरों की तरह फिकर करना छोड़ बैठें, तो कैसे चले। उनकी और सुनन्दा की कहा-सुनी इस बात पर अक्सर हो जाती है।

बिट्टी की बुआ कहती है—"अरी, क्यों उसे धमकाया करती है ? आखिर बच्ची ही तो है।'

वह कहती हैं—"जीजी, बच्ची तो है, पर लाड़ का बखत होता है। लाड़ क्या मैं करना नहीं जानती ? पर, उमर होती है, और काम के बखत

का लाड़ बिगाड़ ही करता है। और जीजी, काम से आदमी बनता है, लाड़ से कोई भी बनता नहीं है।"

ऐसे समय नये कपड़ों को मैला बनाकर नूनो यदि आ पहुँचती, तो अम्मा उसकी कहतीं—"क्यों, फिर खेलने बाहर पहुँच गई थी ? अब तू ठीक तरह पढ़ेगी नहीं ? अच्छी बात हैं।"

और उनकी मुद्रा को देखकर नूनो बुआ की गोद के पास सरक जाती और बुआ उसे गोद में दुबका लेती।

उस समय 'नहीं जीजी, यह नहीं होगा'—कहतीं और नूनो को उस गोद में से खींचती हुई वह ले जातीं। उसे रुलातीं, और फिर अपनी गोद में लेकर, तभी मँगाकर मीठी-मीठी बर्फी खिलातीं।

उनके पेट की कन्या है, पर दुनिया बुरी है। उसने पढ़ना-लिखना जैसी भी चीज़ अपने बीच में पैदा कर रखी है। और उसी दुनिया में मास्टर लोग भी हैं, जो डण्डा दिखाकर बच्चों को पढ़ा देंगे और आपसे रुपया लेकर पेट पाल लेंगे। और उसी दुनिया में एक चीज़ है प्रतिष्ठा। और भी इसी तरह की बहुत-सी चीज़ें हैं। और फिर है ब्याह, जिसमें एक सास मिलती है और एक ससुर मिलता है।

वह माँ है और उसके पेट की कन्या है। पर इस दुनिया को लेकर वह झँझट में पड़ जाती है। तभी नूनो को थप्पड़ मारकर अपनी गोदी से दूर करके कहती है—"पढ़।"

और नूनो रोती है और पढ़ नहीं सकती।

और माँ कहती है—"कम्बख़्त, पढ़।"

तब लड़की के पढ़ उठने से ही गुज़ारा होता है। या माँ के जी में आँसू की भाप-सी उठ आने पर भी गुज़ारा हो जाता है। तब वह कहती है—"मास्टरजी, इसे तस्वीर वाला सबक पढ़ाना। और मास्टरजी, इसके मन के मुताबिक पढ़ाना।"...

और फिर नूनो की ओर जो देखती है, तो और कहती है—"अच्छा मास्टरजी, आज छुट्टी सही। ज़रा कल जल्दी आ जाना।"

माँ तो माँ है, पर लड़की तो सदा लड़की बनी रहेगी नहीं। माँ के मन में वही बात उठकर दर्द दे रही है। आज तो लड़की है, पर एक कल

भी तो आ पहुँचने वाला है, जब उसका ब्याह होगा और लोग पूछेंगे, कितना पढ़ी है, क्या जानती है। तब उनके सामने यह बात किस तरह कहने लायक हो सकेगी, कि मेरे बड़े दुलार की है, बड़े प्यार से पाला है ! तब तो खोजकर यही कहना होगा कि खूब काम सीखा है और उस मास्टर से इतना पढ़ी है और वहाँ से यह पास किया है। उस कल के आने पर चुप नहीं रह जाए, बल्कि बहुत कुछ उस रोज़ कहने के लिए और दिखाने के लिए उसके पास जमा हो—इसी के प्रबन्ध में तो वह है। वह माँ तो है, पर यह भी कैसे भूले कि इसीलिए है कि किसी अजनबी को खोजकर पाए और उसे अपनी लड़की सौंप डाले। यह ज़िम्मेदारी वह बहुत कम क्षण भूल पाती है।

मैं लिख रहा था, उन्होंने आकर कहा—"तुम तो देखते नहीं हो और नूनो यों ही रह जाएगी। पढ़ने-लिखने में उसका चित्त नहीं है। और तुम घर से बैरागी बने हो। क्यों नहीं बुलाकर उसे ज़रा कुछ कहते हैं ?"

मैंने कहा—"अभी छः बरस की ही तो है।"

"यों ही बीस बरस की भी हो जाएगी।"

मैंने हँसकर कहा—"यों ही तो बीस बरस की कैसे हो जाएगी ? चौदह बरस बीच के काट लेगी तब होगी।"

"तुम तो यों ही कहते हो। मैं कहती हूँ, नेक उसका ख्याल भी रख लिया करोगे, तो कुछ तुम्हारा बिगड़ नहीं जाएगा।"

मैंने कहा—"अच्छी बात है..."

"अच्छी बात नहीं है..."

मैंने कहा—"अच्छा, अच्छी बात नहीं है..."

होते-होते वह सचमुच बिगड़ने-सी लगीं।

मैंने कहा—"तुम उसे नूनो फिर क्यों कहती हो ? नाम तो उसका सुनयना है। नूनो बनकर वह खिलवाड़ नहीं छोड़ सकती। और तुम कहना चाहती उसे नूनो ही, फिर चाहती हो, खेलना छोड़ दे अर्थात् नूनो रहना छोड़ दे। तुम उसे नूनो रखना छोड़ दो, वह भी आप छोड़ देगी।"

"हाँ मैं सुनयना नहीं, और कुछ कहूँगी ! तुम्हारी मत कैसी है कि उल्टे मुझे ही कहते हो, यह नहीं कि उसे नेक बुलाकर समझा देते।"

मैंने कहा, "अच्छा, अच्छा, तुम चाहती क्या हो ?"

उन्होंने कहा–"मैं पाठशाला तो भेजना नहीं चाहती। अध्यापिका सब ऐसी ही होती हैं, बच्चे का नेक ख्याल नहीं रखतीं। और धमकाएँ, मारें भी, उसका क्या ठीक है। नहीं, बच्चे को मैं आँख-ओझल नहीं करूँगी। पर एक पढ़ाने वाली और लगा दो। घर पर पूरे पाँच घण्टे उसे पढ़ना चाहिए।"

मैंने कहा–"पाँच घण्टे !"

"तुम्हारा बस हो, तुम सारी उमर उसे खेलने दो।"

मैंने कहा–"पाँच घण्टे बहुत होते हैं। एक घण्टा पढ़ लेना बहुत काफी है। यों अभी ज़रूरी वह भी नहीं है।"

"तुम्हारे लेखे ज़रूरी कुछ नहीं है। सिर तो मेरे बीतती है।"

मैंने कहा–"अच्छी बात है, एक घण्टा मैं पढ़ा दिया करूँगा।"

"तुम पढ़ाकर रखोगे। यह होता तो दिन ही अच्छे न होते ?"

मैंने कहा–"समझो, अब दिन अच्छे आ गए। मैं पढ़ाऊँगा।"

"पढ़ाना–कहीं तमाशा करो...।"

"जैसे पढ़ाऊँगा, पढ़ा दूँगा। यह काम तो मेरे ऊपर रहने दो।"

वह आश्वस्त और प्रसन्न होकर बोली–"अच्छी बात है। मैं देख लिया करूँगी।"

और वह चली गईं और मैं अपने काम में लग गया।

पर कुछ ही देर में वह लौट आईं और मेरे सामने के कागज़ों को सरकाकर मेज़ के पास खड़ी हो रहीं। जिज्ञासा भाव से मैं उनकी ओर देखकर रह गया।

बोलीं–"तुम नाराज़ तो नहीं हो गए। देखो, नाराज़ मत होना। मैं क्या करूँ ! मेरा मन कहता है, बिट्टन को खूब पढ़ाना चाहिए और खूब अच्छा बनाना चाहिए। इसी से मैं कहती हूँ।..."

मैंने कहा–"ठीक तो है।"

"...मेरे मन बिथा बड़ी होती है। तुम जानो, उसका ब्याह भी होगा। इसी से मैं इतना कहा करती हूँ।"

मैंने कहा–"ठीक तो है।"

और सोचा, लड़की को ब्याह देने के वक्त की व्यथा को इतने साल दूर से खींच लाकर अपने मन में आज ही प्रत्यक्ष अनुभव कर उठने वाला स्त्री-माता का हृदय कैसा है ?

सबेरे ही सबेरे कोलाहल सुन पड़ा। जान पड़ता है, यह हो-हल्ला फिर नूनो को लेकर ही है। नूनो नहीं होती घर में, तब सब चपुचाप अपने-अपने में ही रहते हैं, मानो उन्हें अपने काम से और अपने निज से ही मतलब है, एक-दूसरे से कुछ मतलब शेष नहीं रह गया है। नूनो न हो बीच में, तो हम दोनों तक को आपस में बात करने के लिए विषय का अभाव-सा लगता है। नूनो को लेकर आपस में बोल लेते हैं, झगड़ लेते हैं, मिल लेते हैं। इस तरह खाली-से हम नहीं रहते। दिन भरे-से हुए बीत जाते हैं।

सुना, कहा जा रहा है—"तो नहीं पीएगी तू दूध ?"

"नहीं पीते।"

"नहीं पीती ?"

"हम नहीं पीएँगे !"

"देख लो, जीजी, यह तुम्हारी बेटीजी दूध पीती नहीं हैं।" यह ज़ोर से कहा गया।

और दूर चौके से नूनो की बुआ ने कहा—"दूध पी ले बेटी। कैसी रानी मेरी बेटी है।"

रानी बेटी ने कहा—"हमें रोज़-रोज़ दूध अच्छा नहीं लगता..."

नूनो की माँ ने कहा—"रोज़-रोज़ खेलना तो बड़ा अच्छा लगता है।"

बुआ ने चौके से आते हुए कहा—"पी ले, बेटी; फिर खेलना।"—और अपनी छोटी भौजाई को कहा—"बच्चे को नेक प्यार से कहो, सब मान जाएगा।"

"प्यार से नहीं, मैं तो बड़े गुस्से से कहती हूँ ? लड़की इसी से तो मुँह चढ़ी है।"

बुआ ने कहा—"पी, बेटा, पी..."

मैं अपने कमरे में बैठकर यह सुनने लगा। मेरी बहन चली गई और लड़की ने शायद दूध पीना प्रारम्भ कर दिया।

इतने में नीच स पड़ोसी के लड़के हरिया ने आवाज़ दी—"नूनो, ओ नूनो !"

नूनो ने कहा—"आई।"

नूनो की माँ ने कहा—"पहले दूध पी—(और कहा)—हरी, वह नहीं आएगी।"

हरिया ने ज़ोर से कहा—"नूनो, अरी आई नहीं ?"

इतने में मैंने सुना—बच्चों को कड़ी ताकीद में रखने की उपयोगिता के सम्बन्ध में भाषण आरम्भ हो गया है, जिसमें श्रोतावर्ग में केवल बालकों के पिता लोग ही जान पड़ते हैं। और मेज़ पर शायद एक बाल-मूर्ति भी है, जिसको भली भाँति डाँट-डपटकर और मार-पीटकर भाषण, सामने के सामने, सोदाहरण परिपुष्ट किया जा रहा है।

मैं समझ गया, नूनो अनुशासन की मर्यादा को, हरिया की बाँसुरी की-सी आवाज़ पर तोड़-ताड़कर अपने शिशु-अभिसार को सम्पन्न करने के लिए भाग छूटी है। और मैंने जान लिया, अपने विक्षोभ को खर्च कर डालकर स्वस्थ हो जाने के लिए, विवाद मोल लेने को मेरी पत्नी अब फिर बहन के पास पहुँच गई है। और जो वहाँ होना आरम्भ हो गया, उसकी स्पष्ट ध्वनि भी मेरे कानों पर आकर थप्पड़ों-सी बजने लगी।

मैं उस ओर से उदासीन होकर बाहर छज्जे पर आ गया और गली देखने लगा।

नीचे देखता हूँ, चौबीस घण्टे चलने वाली पत्थर की गली को तो ये बालक लोग भरा समन्दर बना बैठे हैं और इस समन्दर में अकेली खड़ी हुई नूनो नाम की मछली झुककर, अपने टखने छूकर, कह रही है—"इत्ता !"

पर, मुझे तो कुछ भी मालूम न था। मछली का नाम नूनो तो नहीं है, गोपीचन्दर है। और हरिया के साथ और पाँच-सात जने मिलकर, किनारे खड़े-खड़े कह रहे हैं—

"गोपीचन्दर, भरा समन्दर,
बोल मेरी मच्छी, कित्ता पानी ?..."

और गोपीचन्दर जैसे सुन्दर नाम वाली मीन अब की घुटनों तक ही झुक सकती है, क्योंकि समुद्र इस बीच घुटनों तक बढ़ आया है, और बतलाती

है–"इत्ता !"

समुद्र क्षण-क्षण बढ़ रहा है और उस मछली के मन की चौकसी भी बढ़ रही है। वह देखो, जो अब की गाकर और चिल्लाकर पूछा गया है "कित्ता ?" तो वह दोनों हाथों को कटि पर रखकर, एक ठुमकी लगाकर बतला रही है–"इत्ता।" हाय-हाय, देखो, उस बेचारी के कटि तक समुद्र का पानी आ गया है, वह सिर तक डूबने को होती जा रही है।...

और मुसाफिर भाई, तुम बेखटके इस गली में से निकलते चले जाओ। तुम्हारे लिए रोक-टोक नहीं है। पानी तुम्हें नहीं छुएगा। किनारे खड़े ये जो ऊधम करते हुए लड़के-लड़कियाँ हैं, सो ये अब शरारत करके समन्दर पर हमला करने वाले हो रहे हैं और गोपीचन्दर नाम की अकेली मछली ही अपने राज्य की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हुई गली के बीच में खड़ी है। मुसाफिर, तुम झुट से निकलते हुए चले जाओ, नहीं तो ये लोग समन्दर में घुस पड़ेंगे, तब वह कुछ नहीं जानेगी, एकाध को ज़रूर पकड़ लेगी और तब उसे उसी की तरह गोपीचन्दर नाम की मछली बनकर समन्दर में रखकर पहरा देना होगा। और उनको भी तो देखो ! कैसे उल्लसित बाट देख रहे हैं कि पानी उस समन्दर की रानी के कान तक आया नहीं कि वे हुकूमत की स-धूमधाम अवज्ञा करके समन्दर में घुस पड़ेंगे और ज़ोर-शोर से मल-मलकर नहा डालेंगे।

पर, मत समझो, रानी चौकन्नी नहीं है, उसके राज्य में पैर रखकर देखो तो...। वह एक-एक को ऐसा पकड़ती है कि हाँ।

सबने पूछा–"मच्छी, मच्छी, कित्ता पानी ?"

मच्छी रानी एकदम अपने दोनों तरफ देखते हुए सतर्क हो रही। वह सबको खूब अच्छी तरह ताड़ रही है..

उसने कान तक हाथ बढ़ाया, कहा–"इत्ता !"

और सब धम्म-धम्म गली के पत्थर पर कूदकर बदन मलते हुए नहाने लगे। मच्छी रानी हँसती हुई इन चोरों को पकड़ने के लिए दौड़ने लगी।

वह पास आती कि नहाने वाले उछलकर किनारे हो रहते। बेचारी मछली, पानी छोड़, किनारे की खुश्की पर कैसे पैर रख सकती !

पर, सामने को दौड़ने वाली होकर जो एकदम मुड़कर पीछे लपकी

कि एक कुर्ते का छोर मुट्ठी में आ गया। रानी चिल्लाई—"पकड़ लिया" और हँसती हुई हाँफने लगी।

श्री हरिश्चन्द्र इस चोर-कार्य में युक्त पकड़े गए। और पकड़े जाकर वह भी निर्लज्ज हो हँसने लगे।

नौकर ने नूनो का हाथ पकड़कर कहा—"चलो, बहूजी बुलाती हैं।"

नूनो ने हाथ छुड़ाकर कहा—"नहीं जाते।"

नौकर ने छूटा हाथ ज़ोर से पकड़ लिया।

वह मचल पड़ी—"हम नहीं जाएँगे, नहीं जाएँगे।"

खेल भंग हो गया।

मैंने ऊपर से कहा—"छोड़ दो।"

नौकर छोड़कर चला गया।

मैं अपनी मेज़ पर आ गया।

खेल फिर अवश्य आरम्भ हो गया होगा।

बहूजी ने पूछा—"कहाँ है ?"

नौकर ने कहा—"आती नहीं।"

बहूजी ने कहा—"इसीलिए तुझे भेजा था ? कहे, आती नहीं ?"

नौकर—"बाबूजी ने मना कर दिया।'

"कौन बाबूजी ?"

नौकर की कुछ आवाज़ न आई।

"बाबूजी कौन होते हैं ! तुझसे मैंने कहा था या और किसी ने कहा था ?—चल, ला उसे।"

नौकर बाहर आया, और मैंने छज्जे पर पहुँचकर फिर कह दिया, "रहने दो, छोड़ दो।"

लड़की सहमी और फिर खेलने लगी।

नौकर ने मेरी ओर देखा—"बाबूजी !"...

मैंने कहा—"तुम जाओ, कुछ बात नहीं है।"

नौकर लौटकर आ गया। उसकी बात बहूजी ने चुपचाप सुन ली। कुछ भी उन्होंने नहीं कहा। उन्हीं कपड़ों बाहर आई, रोती-पीटती नूनो को खचेड़ती ले चलीं।

भीतर आकर बोलीं—"तेरे बाबूजी अब आकर रोकें न मुझको।"
मैंने सुन लिया और मैं कमरे से निकलकर उनके सामने नहीं जा पहुँच सका।
नूनो को एक कोठरी में मूँद दिया गया।

मूँद तो दिया गया, पर मुँदा रहने दिया जाता कैसे ? क्योंकि माँ ने बेटी को मूँदा था। और क्या मैं जानता नहीं कि इस बीच वह माँ रो भी ली खूब ? बहुत था, जी बह जाना था। लेकिन मैंने खाना न खाया और शाम को भी न खाया।
वह क्या ग़ज़ब किया मैंने ?
क्योंकि जब मैंने कहा—"मैंने लड़की का एक घण्टा पढ़ाने को लिया है। मेरी यही पढ़ाई है। अब तुम इसमें दखल देने नहीं पाओगी।" तब उन्होंने आँसुओं से सब कुछ, सब कुछ, स्वीकार कर लिया।
पर चौथे रोज़ वह मायके चल दीं।

वह आ गई हैं और मेरी सब बात झट मान लेती हैं।
पर हाल वही है। क्योंकि लड़की को पढ़ाना है और पिटकर दुबली होगी, तो डाक्टर है, और डाक्टर के लिए पैसा है—पर लड़की को पढ़ना है।
मैं कहता हूँ—"अच्छा बाबा।"
और अकेले में नूनो से मच्छी-मच्छी खेलना चाहता हूँ। और नूनो खेलती नहीं, मुझसे किताब के माने पूछती है।

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा (सन् 1903-1981 ई.)–*श्री वर्माजी का साहित्यिक जीवन प्रेमचन्द-युग में ही प्रारम्भ होता है। पहली कहानी सन् 1921 में प्रकाशित हुई थी। यद्यपि वर्माजी ने इनी-गिनी कहानियाँ लिखी हैं, किन्तु फिर भी वे आधुनिक कहानीकला की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। 'खिलते फूल', 'इन्स्टालमेंट', 'दो बाँके' आपके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं। प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' ने आपको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्रदान की। अधिकतर कहानियाँ सामाजिक एवं गार्हस्थिक जीवन की दैनंदिन बातों एवं घटनाओं पर आधारित हैं जिन्हें आप अपनी कल्पना, वर्णन-पटुता एवं हास्य तथा व्यंग्य के द्वारा इतना रोचक बना डालते हैं कि उनका प्रभाव पाठक पर पड़े बिना नहीं रहता। 'प्रायश्चित्त', 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी', 'प्रेज़ेण्ट्स', 'विक्टोरिया क्रास' कहानियों ने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। वास्तव में, वर्माजी यथार्थवादी लेखक हैं, अतएव आपकी कहानियों में जीवन की कुरूपताओं पर तीखा व्यंग्य एवं उपहास के साथ असन्तोष, क्षोभ, निराशा और उत्पीड़न का चित्रण भी सफलता के साथ हुआ है।*

'प्रायश्चित्त' एक शिक्षाप्रद कहानी है जो रूढ़िग्रस्त परिवार के जीवन-आदर्शों पर आधारित है। एक साधारण-से प्रसंग–बिल्ली के उत्पात और उसकी हत्या–के भ्रम को लेकर लेखक ने बड़ी खूबी से परिवार की रूढ़िग्रस्त मान्यताओं का हास्यपूर्ण वर्णन किया है। कहानी का अन्त इतना रोचक है कि पाठक के मन पर एकदम सम्पूर्ण कहानी का प्रभाव अंकित हो जाता है। अतएव

प्रभाव-प्रधान कहानियों में यह कहानी विशेष उल्लेखनीय मानी जाती है।

प्रायश्चित्त

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से और रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू, दो महीना हुआ, मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी। पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भण्डार-घर की चाभी उसकी करधनी से लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा और रामू की बहू घर में सब कुछ; सासजी ने माला ली और पूजापाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डार-घर खुला है तो कभी भण्डार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हाँडी में घी रखते-रखते ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढंककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर यह बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परच गई कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी हुई कटोरी पहुँची और जब रामू आए तब कटोरी साफ चटी हुई। बाज़ार से मलाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, मलाई गायब। रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या कबरी बिल्ली ही। मौरचाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कटघरा आया। उसमें दूध, मलाई, चूहे, और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गए, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी, पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासले पर कि रामू ही बहू

उस पर हाथ न लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ और पतिदेव को रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाए गए, सोने का बर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊँचे ताक पर रखा गया जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई; ताक के नीचे खड़ी होकर उसने ऊपर के कटोरे की ओर देखा, सूँघा—माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाज़ी और रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा। कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फर्श पर।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी। क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े और खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाए कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई वह उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई; हाथ में पाटा लेकर लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर उसने पाटा बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली, न डुली, न चीखी, न चिल्लाई। बस एकदम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और

सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गई। रामू की बहू सिर झुकाए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

मिसरानी बोली—"माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।"

सासजी बोली—"हाँ, ठीक कहती हो, जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाए, तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू, यह क्या कर डाला ?"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो ? कहो तो पण्डितजी को बुला लाऊँ।"

सास की जान में जान आई—"अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पण्डितजी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई। पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाए बैठी थी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े। पण्डिताइन से मुसकराते हुए बोले—"भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित्त होगा। पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से, मोटे-से आदमी थे। लम्बाई चार फुट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोलमटोल, मूँछें बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में पंसेरी खुराक वाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को इस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुँचे और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुखजी। बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा—'पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक मिलता है ?"

पण्डित परमसुख ने पन्ना देखते हुए कहा—"अकेले बिल्ली की हत्या से नरक का नाम नहीं बतलाया जा सकता, वह महूरत भी जब मालूम

हो जाए जब बिल्ली की हत्या हुई तब नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह।"—मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पन्ने के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उँगलियाँ चलाईं। मत्थे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया। माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया—"हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में बिल्ली की हत्या। कुम्भी पाक नरक का विधान। रामू की माँ, यह तो बड़ा बुरा हुआ।"

रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गए। "तो फिर पण्डितजी, अब क्या होगा, आप ही बतलावें।"

पण्डित परमसुख मुसकराए—"रामू की माँ, चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित्त से सब कुछ ठीक हो जाएगा।"

रामू की माँ ने कहा—"पण्डितजी, इसीलिए तो आपको बुलवाया था। अब आगे बतलाओ कि क्या किया जाए।"

"किया क्या जाए—यही एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाए—जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी तब तक तो घर अपवित्र रहेगा, बिल्ली-दान के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाए।"

छन्नू की दादी—"हाँ और क्या, पण्डितजी ठीक तो कहते हैं। बिल्ली अभी दान दे दी जाए और पाठ फिर हो जाए।"

रामू की माँ ने कहा—"तो पण्डितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाए ?"

पण्डित परमसुख मुसकराए, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाए ? अरे रामू की माँ, शास्त्रों में तो कहा है कि बिल्ली के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवाई जाए, लेकिन अब कलयुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो रहा है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की माँ, बिल्ली के तौल-भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली इक्कीस सेर से कम की क्या होगी, कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवाकर दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा।"

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पण्डित परमसुख को देखा—"अरे बाप

रे ! इक्कीस तोला सोना। पण्डितजी, यह तो बहुत है। तोला भर की बिल्ली से काम न निकलेगा ?''

पण्डित परमसुख हँस पड़े—''रामू की माँ ! एक तोला सोने की बिल्ली ! रुपए का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर पर बड़ा पाप है—इसमें इतना लोभ ठीक नहीं।''

मोल-तोल शुरू हुआ मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया।

इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पण्डित परमसुख ने कहा—''उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं। रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।''

''पूजा का सामान कितना लगेगा ?''

''अरे, कम से कम सामान में हम पूजा कर देंगे। दान के लिए करीब दस मन गेहूँ? एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पाँच मन जौ, और पाँच मन चना, चार पंसेरी घी और मन-भर नमक भी लगेगा। बस, इतने में काम चल जाएगा।''

''अरे बाप रे ! इतना सामान, पण्डितजी ! इसमें तो सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जाएगा।''—रामू की माँ ने रुआँसी होकर कहा।

''फिर इससे कम में काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ ! खर्च को देखते वक्त पहले बहू के पाप को तो देख लो। यह तो प्रायश्चित्त है, कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा, प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं। अरे सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।''

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए। किसनू की माँ ने कहा—''पण्डितजी ठीक कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।''

छन्नू की दादी ने कहा—''और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं। दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं।''

मिसरानी ने कहा—''और माँजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।''

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डितजी के साथ।

पण्डित परमसुखजी मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा–"रामू की माँ, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे ज़िम्मे थोड़ा-सा खर्च है। सो इससे मुँह न मोड़ो।"

एक ठण्डी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा–"अब तो जो नाच नचाओगे, नाचना ही पड़ेगा।"

पण्डित परमसुख ज़रा कुछ बिगड़कर बोले–"रामू की माँ ! यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें अखरता है तो न करो–मैं चला।" इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पण्डिजी, रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता–बेचारी को कितना दुःख है–बिगड़ो न।"–मिसरानी, धन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर से कहा।

रामू की माँ ने पण्डितजी के पैर पकड़े और पण्डितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपए और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा।" कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा–"सो इसकी चिन्ता न करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जाएगा।"

"यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो।"–मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डितजी पर व्यंग्य किया।

"अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ। रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो। मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ–दो घण्टे में बनवाकर लौटूँगा तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो और देखो, पूजा के लिए. .."

पण्डितजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबराकर कहा–"अरी क्या हुआ री ?"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा–"माँजी; बिल्ली तो उठकर भाग गई।"

यशपाल

यशपाल (सन् 1906-1980 ई.)–यशपालजी रूसी साम्यवाद से प्रभावित रहे हैं। इसलिए आरम्भ की कहानियों में इसी भावना के स्पष्ट दर्शन होते हैं। आगे चलकर वादीय मनोवृत्ति से मुक्त होकर जहाँ आपने मनोभावनाओं का स्वतन्त्र विश्लेषण किया है वहाँ आपकी कहानियां कहीं अधिक हृइयग्राही बन गई हैं। 'पराया सुख', 'हलाल का टुकड़ा', 'ज्ञानदान', 'एक राज', 'गंडेरी', 'अभिशप्त', 'परदा', 'आदमी का बच्चा' आदि कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं जिनसे लेखक को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। यशपालजी जन-जीवन के सशक्त कहानीकार हैं। सामाजिक जीवन के विविध पहलुओं यथा, प्रेम, पाखण्ड, शोषण, वर्गभेद, बुर्जुआ समाज की स्वार्थान्धता, संकीर्णता एवं मध्यम वर्ग की विवशता, आर्थिक विषमता आदि स्वार्थान्धता का आपने व्यंग्यपूर्ण मार्मिक चित्रण किया है। 'आदमी का बच्चा' एक ऐसी ही कहानी है जिसमें अभिजात वातावरण में पले बालक के बाल्य सुलभ हृदय का चित्रण किया गया है जो 'डिस्टर्ब' करते हुए कुत्ते के पिल्ले और रोते हुए आदमी (नौकर) के बच्चे की स्थिति में भेद नहीं कर पाता। म्युनिसिपलेटी वाले ऐसे पिल्ले को गरम पानी में डूबाकर मार डालते हैं तो भूख से रोते हुए बच्चे को भी क्यों नहीं वैसे ही मार डाला जाए–यह जलता हुआ प्रश्न जब वह बालक अपनी मम्मी से करता है तो अभिजात वर्ग की सम्पन्नता चोट खाकर काँप उठती है। अतएव, शिशु-मनोविज्ञान की सुन्दर झलक दिखलाती हुई यह कहानी प्रभाव-प्रधान कहानी का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है।

आदमी का बच्चा

दोपहर को डौली कान्वेण्ट (अंग्रेज़ी स्कूल) में रहती है। इसके बाद उसका समय प्रायः आया 'बन्दी' के साथ कटता है। मामा दोपहर में लंच के लिए साहब की प्रतीक्षा करती है। साहब जल्दी में रहते हैं। ठीक एक बजकर सात मिनट पर आए, गुसलखाने में हाथ-मुँह धोया, इतने में मेज़ पर खाना आ जाता है। आधे घण्टे में खाना समाप्त कर, सिगार सुलगा साहब कार में मिल लौट जाते हैं। लंच के समय डौली खाने के कमरे में नहीं आती, अलग खाती है।

संध्या साढ़े पाँच बजे साहब मिल से लौटते हैं तो बेफ़िक रहते हैं। उस समय वे डौली को अवश्य याद करते हैं। पाँच-सात मिनट उससे बात करते हैं। और फिर मामा से बातचीत करते हुए देर तक चाय पर बैठे रहते हैं। मामा दोपहर या तीसरे पहर कहीं बाहर जाती है तो ठीक पाँच बजे लौटकर साहब के लिए कार मिल में भेज देती है। डौली को बुला साहब के मुआयने के लिए तैयार कर लेती है। हाथ-मुँह धुलवाकर डौली की सुनहलापन लिए, काली कत्थई अलकों में वे अपने सामने कंघी कराती है। स्कूल की वर्दी की काली-सफेद फ्राक उतारकर, दोपहर में जो मामूली फ्राक पहना दी जाती है उसे बदल नई बढ़िया फ्राक उसे पहनाई जाती है। बालों में रिबन बाँधा जाता है। सेण्डल के पालिश तक पर मामा की नज़र जाती है।

बग्गा साहब मिल में चीफ इंजीनियर हैं। विलायत पास हैं। बारह सौ रुपया महीना पाते हैं। जीवन से सन्तुष्ट हैं परन्तु अपने उत्तरदायित्व से भी बेपरवाह नहीं। बस एक ही लड़की है डौली। डौली पाँचवें वर्ष में है। उसके बाद कोई सन्तान नहीं हुई। एक ही सन्तान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा कर सकने से साहब और मामा को पर्याप्त सन्तोष है। बग्गा साहब की नज़रों में सन्तान के प्रति उत्तरदायित्व का आदर्श ऊँचा है। वे डौली को बेटी या बेटा सब कुछ समझकर सन्तोष किए हैं। यूनिवर्सिटी की शिक्षा तो वह पाएगी ही, इसके बाद शिक्षाक्रम पूरा करने के लिए उसका विलायत जाना भी आवश्यक और निश्चित है। सन्तान के प्रति शिक्षा के

उत्तरदायित्व का यह आदर्श कितनी सन्तानों के प्रति पूरा किया जा सकता है ? साहब कहते हैं—यों कीड़े-मकोड़े की तरह पैदा करके क्या फायदा ? मामा—मिसेज़ बग्गा भी हामी भरती है—और क्या ?

"डौली ! ...डौली ! ....डौली ! ..." मामा तीन दफे पुकार चुकी थीं। चौथी दफे उन्होंने आया को पुकारा। कोई उत्तर न पा वे खिसियाकर स्वयं बरामदे में निकल आईं। अभी उन्हें स्वयं भी कपड़े बदलने थे। देखा—बंगले के पिछवाड़े से; जहाँ धोबी और माली के क्वार्टर हैं, आया डौली को पकड़े लिए जा रही है। मामा ने देखा और धक्क से रह गईं। वे समझ गईं—डौली अवश्य ही माली के घर गई होगी। दो-तीन दिन पहले मालिन के बच्चा हुआ था। उसे गोद में लेने के लिए डौली कितनी ही बार ज़िद्द कर चुकी थी। डौली के माली की कोठरी में जाने से मामा भयभीत थी। धोबी के लड़के को पिछले ही सप्ताह खसरा निकला था।

लड़की उधर जाती तो उन बेहूदे बच्चों के साथ शहतूत के पेड़ के नीचे धूल में से उठा-उठाकर शहतूत खाती। उन्हें भय था, उन बच्चों के साथ डौली की आदतें बिगड़ जाने का। आया इन सब अपराधों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर अनुभव कर भयभीत थी। मेम साहब के सम्मुख उनकी बेटी की उच्छृंखलता से अपनी बेबसी दिखाने के लिए वह डौली से एक कदम आगे, उसकी बाँह थामे यों लिए आ रही थी जैसे स्वच्छन्दता से पत्ती चरने के लिए आतुर बकरी को, जबरन कान पकड़ घर की ओर लाया जाता है।

मामा के कुछ कह सकने से पहले ही आया ने ऊँचे स्वर में सफाई देना शुरू किया—'हम ज़रा सैंडिल पर पालिस करे के तईं भीतर गयेन। हमसे बोलीं कि हम गुसलखाने जाएँगे। इतने में हम बाहर निकलकर देखे तो माली के घर पहुँची है। हमको तो कुछ गिनती ही नहीं। हम समझाएँ तो उल्टे हमको मारती है... ।"

इस पेशबन्दी के बावजूद आया को डाँट पड़ी।

"दिस इज़ वेरी सिली।" मामा ने डौली को अंग्रेज़ी में फटकारा। अंग्रेज़ी के सभी शब्दों का अर्थ न समझकर भी डौली अपना अपराध और उसके प्रति मामा की उद्विग्नता समझ गई।

तुरन्त साबुन से हाथ-मुँह धुलाकर डौली के कपड़े बदले गए। चार बजकर बीस मिनट हो चुके थे इसलिए आया जल्दी-जल्दी डौली को मोजे और सैण्डल पहना रही थी और मामा स्वयं उसके सिर में कंघी कर उसकी लटों के पेचों को फीते से बाँध रही थी। स्नेह से बेटी की पलकों को सहलाते हुए उन्हें अचानक गर्दन पर कुछ दिखाई दिया—जूँ। वज्रपात हो गया। निश्चय ही जूँ माली और धोबी के बच्चों की संगत का परिणाम था। आया पर एक और डाँट पड़ी और नोटिस दी गई कि यदि फिर डौली आवरा, गन्दे बच्चों के साथ खेलती पाई गई तो बस बरखास्त कर दी जाएगी।

बेटी की यह दुर्दशा देख माँ का हृदय पिघल उठा। अंग्रेज़ी छोड़ वे द्रवित स्वर में अपनी ही बोली में बेटी को दुलार से समझाने लगीं—"डौली तो प्यारी बेटी है, बड़ी ही सुन्दर, बड़ी ही लाड़ली बेटी। हम इसको सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। डौली, तू तो अंग्रेज़ों के बच्चों के साथ स्कूल जाती है न बस में बैठकर। ऐसे गन्दे बच्चों के साथ नहीं खेलते न।"

मचलकर फर्श पर पाँव पटककर डौली ने कहा—"मामा, हमको माली का बच्चा ले दो, हम उसे प्यार करेंगे।"

"छी—छी—!" मामा ने समझाया, "वह तो कितना गन्दा बच्चा है ! ऐसे गन्दे बच्चों के साथ खेलने से छी-छी वाले हो जाते हैं। इनके साथ खलने से जुएँ पड़ जाती हैं। वे कितने गन्दे हैं, काले-काले धत्त ! हमारी डौली कहीं काली है ? आया, डौली को खेलने के लिए मैनेजर साहब के यहाँ ले जाया करो। वहाँ यह रमन और ज्योति के साथ खेल आया करेगी। इसे शाम को कम्पनी बाग ले जाना।"

डौली ने माँ के गले में बाँहें डाल विश्वास दिलाया कि अब वह कभी गन्दे और छोटे लोगों के काले बच्चों के साथ नहीं खेलेगी। उस दिन चाय पीते-पीते बग्गा साहब और मिसेज़ बग्गा में चर्चा होती रही कि बच्चे न जाने क्यों छोटे बच्चों से खेलना पसन्द करते हैं।...एक बच्चे को ही ठीक से पाल सकना मुश्किल है। जाने कैसे लोग इतने बच्चों को पालते हैं। ...देखो तो माली को। कमबख्त के तीन बच्चे पहले हैं, एक और हो गया।

बग्गा साहब के यहाँ एक कुतिया विचित्र नस्ल की थी। कागजी बादाम का-सा रंग, गर्दन और पूँछ पर रेशम-से मुलायम और लम्बे बाल, सीना चौड़ा। बाँहों की कोहनियाँ बाहर को निकली हुई। पेट बिलकुल पीठ से सटा हुआ। मुँह जैसे किसी चोट से पीछे को बैठ गया हो। आँखें गोल-गोल जैसे ऊपर से रख दी गई हों। नए आने वालों की दृष्टि उसकी ओर आकर्षित हुए बिना न रहती। यही कुतिया की उपयोगिता और विशेषता थी। ढाई सौ रुपया इसी शौक का मूल्य था।

कुतिया ने पिल्ले दिए। डौली के लिए यह महान उत्सव था। वह कुतिया के पिल्लों के पास से हटना ही न चाहती थी। उन चूहे जैसी मुँदी हुई आँखों वाले पिल्ले को माँगने वालों की कमी न थी। परन्तु किसे दे और किसे इनकार करें ? यदि इस नस्ल को यों बाँटने लगे तो फिर उसकी कद्र ही क्या रह जाए। कुतिया का मोल ढाई सौ रुपया उसके दूध के लिए तो होता नहीं।

साहब का कायदा था, कुतिया पिल्ले देती तो उन्हें मेहतर से कह गरम पानी में गोता देकर मरवा देते। इस दफे भी वे यही कहना चाहते थे परन्तु डौली के कारण परेशान थे। आखिर उसके स्कूल गए रहने पर बैरे से कह मेहतर से यह काम करवा डाला।

स्कूल से लौट डौली ने पिल्लों की खोज शुरू की। आया ने कहा–"पिल्ले मैनेजर साहब के यहाँ रमन को दिखाने के लिए भेजे हैं, शाम को आ जाएँगे।"

मामा ने कहा–"बेबी, पिल्ले सो रहे हैं। जब उठेंगे तो तुम उनसे खेल लेना।"

डौली पिल्लों को खोजती ही फिरी। आखिर मेहतर से उसे मालूम हो गया कि वे गरम पानी में डुबोकर मार डाले गए हैं।

डौली रो-रोकर बेहाल हो रही थी। आया उसे पुचकारने के लिए कम्पनी बाग ले गई। डौली बार-बार पूछ रही थी–"आया, पिल्लों को गरम पानी में डुबोकर क्यों मार दिया ?"

आया ने समझाया–डैनी (कुतिया) इतने बच्चों को दूध कैसे पिलाती ? वे भूख से चेऊँ-चेऊँ कर रहे थे इसीलिए उन्हें मरवा दिया।" दो दिनों

तक डैनी के पिल्लों का मातम डैनी और डौली ने मनाया फिर और लोगों की तरह वे भी उन्हें भूल गईं।

माली के नए बच्चे के रोने की 'कें-कें' आवाज़ आधी रात, दोपहर में, सुबह-शाम किसी भी समय आने लगती। मिसेज बग्गा को यह बहुत बुरा लगता। झल्लाकर वे कह बैठतीं–"जाने इस बच्चे के गले का छेद कितना बड़ा है।"

बच्चे की कें-कें उन्हें और भी बुरी लगती जब डौली पूछने लगती–"मामा, माली का बच्चा क्यों रो रहा है ?"

बिन्दी समीप ही बैठी बोल उठी–"रोएगा नहीं तो क्या, माँ के दूध ही नहीं उतरता।"

मामा और बिन्दी को ध्यान नहीं था कि डौली उनकी बात सुन बोल उठी–"मामा, माली के बच्चे को मेहतर से गरम पानी में डुबवा दो तो फिर नहीं रोएगा।"

बिन्दी ने हँसकर धोती का आँचल होंठों पर रख लिया। मामा चौक उठी। डौली अपनी भोली, सरल आँखों में समर्थन की आशा लिए उनकी ओर देख रही थी।

"दिस इज़ वेरी सिली डौली–कभी आदमी के बच्चे के लिए ऐसा कहा जाता है।" मामा ने गम्भीरता से समझाया। परिस्थिति देख आया डौली को बाहर घुमाने ले गई।

तीसरे दिन संध्या समय डौली मैनेजर साहब के यहाँ रमन और ज्योति के साथ खेलकर लौट रही थी। बँगले के दरवाज़े पर माली अपने नए बच्चे को कोरे कपड़े में लपेटे दोनों हाथों पर लिए बाहर जाता दिखाई दिया। उसके पीछे मालिन रोती चली आ रही थी।

आया ने मरे बच्चे की परछाईं पड़ने के डर से उसे एक ओर कर लिया। डौली ने पूछा–"यह क्या है ? आया, माली क्या ले जा रहा है ?"

"माली का छोटा बच्चा मर गया है।" धीमे से आया ने उत्तर दिया और डौली को बाँह से थाम बँगले के भीतर ले चली।

डौली ने अपनी भोली, नीली आँखें आया के मुख पर गड़ाकर पूछा–"आया, माली के बच्चे को क्या गरम पानी में डुबो दिया ?"

"छिः डौली, ऐसी बातें नहीं करते।" आया ने धमकाया, "आदमी के बच्चे को ऐसे थोड़े मारते हैं।"

डौली का विस्मय शान्त न हुआ। दूर जाते माली की ओर देखने के लिए घूमकर उसने फिर पूछा—"तो आदमी का बच्चा कैसे मरता है ?"

लड़की का ध्यान उस ओर से हटाने के लिए उसे बँगले के भीतर खींचते हुए आया ने उत्तर दिया—"वह मर गया, भूख से मर गया है। चलो मामा बुला रही है।"

डौली चुप न हुई, उसने फिर पूछा—"आया, हम भी भूख से मर जाएँगे ?"

"चुप रहो डौली।" आया झुँझला उठी, "ऐसी बात करोगी तो मामा से कह देंगे।"

लड़की के चेहरे की सरलता से उसका माँ का हृदय पिघल उठा। उसकी घुँघराली लटों को हाथ से सहलाते हुए आया कहने लगी—"बैरी की आँख में राई-नौन। हाय मेरी मिस साहब, तुम ऐसे आदमी थोड़े ही हो।...भूख से मरते हैं। कमीने आदमियों के बच्चे।"

कहते-कहते आया का गला रुंध गया। उसे अपना लल्लू याद आ गया...दो बरस पहले...। तभी से तो वह साहब के यहाँ नौकरी कर रही थी।

अज्ञेय

अज्ञेय (सन् 1911-1987 ई.)–आपका पूरा नाम सचिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय' था। अज्ञेयजी की प्रतिभा बहुमुखी है। क्रान्तिकारी जीवन के कारण आपने अधिकतर कहानियों में जेल और क्रान्तिकारी संघर्ष के चित्र अंकित किए हैं। आपकी कहानियाँ भी भाव-प्रधान हैं। 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठरी की बात' तथा 'जयदोल' आदि आपकी कहानियों के कलापूर्ण संग्रह हैं। निम्न एवं मध्यम वर्ग के लोगों के भारग्रस्त जीवन के प्रति सहृदय होकर लिखने से इनकी कतिपय कहानियाँ भाव-प्रधान या वातावरण-प्रधान कहानियों के श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, रचना टेकनीक का विशिष्ट ढंग, परिमार्जित भाषा-शैली, भावप्रवणता, कहानीकार अज्ञेय की विशेषताएँ हैं।

दारोग़ा अमीचन्द

यों तो जिस जेल की बात है उसी का नाम मैं बता देता, पर मुश्किल यह है कि उसके साथ फिर दारोग़ा का नाम भी बताना पड़ेगा या आप खुद पता लगा लेंगे, और एक कहानी के नाम पर किसी को दुखः देना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता, फिर चाहे कहानी सच्ची ही क्यों न हो। इतना बता सकता हूँ कि बात सन् चौंतीस की है, जब देश-भर की जेलें दूसरी बार खचाखच भर रही थीं, और ए, बी, सी क्लासों में बँट कर अलग-अलग

दलों के बिल्ले लगा कर भी बहुत-से असन्तुष्ट आन्दोलक 'सियासी' के नाम के द्वारा एक बिरादरी में शामिल होकर अपने दिन बिता रहे थे।

कहने को कह लीजिए कि वह हज़ारा की जेल थी, क्योंकि हज़ारा जेल पंजाब की शायद सबसे बड़ी जेल थी—और सच को छिपाना हो तो उसे झूठ में नहीं बड़प्पन में छिपाना ज़रा भला मालूम होता है। मैं हज़ारा जेल में नया-नया आया था। तब तक 'बी' क्लास लेकर लाहौर की जेल में सूने मगर आराम के दिन काट रहा था, एक बार सूनेपन से ऊब कर कुछ झगड़ा कर बैठा तो 'सी' क्लास हो गई और तब मैं हरिपुर हज़ारा की जेल भेज दिया गया। मैंने सोचा कि चलो, आराम गया तो सूनापन भी चला जाएगा; जीवन में कुछ गति आएगी, हज़ारा की बड़ी जेल में कुछ रंगीनी तो होगी—कहीं अधिक स्याह रंग होंगे तो कहीं लाल-उजला-नौरंगी रंग भी तो उभरेगा ही ! और इसमें मुझे निराश नहीं होना पड़ा। यों तो रंगीनी की मुझे सिर्फ़ आशा थी और स्याहपन का पक्का विश्वास, क्योंकि हज़ारा के नए दारोग़ा साहब, जिनकी बात सुना रहा हूँ, एक नम्बर ज़ालिम मशहूर थे। अटक जेल में मार्शल ला के पुराने क़ैदियों के साथ उन्होंने जो-जो ज्यादतियाँ की थीं, उसे पंजाब-भर की जेलों में लोग जानते थे, और उन्हीं के कारण दारोग़ा का नाम दारोग़ा अमीचन्द अटवाला हो गया था, यद्यपि उनकी बदौलत अब वह दारोग़ा से बढ़कर डिप्टी साहब हो गए थे और राय साहब का ख़िताब भी उन्हें मिल चुका था। यह भी सुना जाता है, ब्रिटिश एम्पायर का आर्डर भी उन्हें शीघ्र मिलने वाला है। इन्हीं दारोग़ा साहब की वजह से अटक जेल का भी आतंक सूबे-भर में फैल गया था, जिसको अटक भेजा जाता था वह समझ लेता था कि उसे द्वीपान्तरित किए बग़ैर काले पानी भेजा जा रहा है, और जो सुनता था, जान लेता था कि जिसे भेजा गया है, वह या तो कोई बड़ा दबंग और खतरनाक सियासी क़ैदी है जिसके आत्माभिमान को सरकार जैसे भी हो तोड़ना चाहती है, या फिर कोई ऐसा दुष्ट और लाइलाज इख़लाकी जिसे सब सज़ाएँ देकर जेल वाले हार गए हों, यानी जो जेल के मुहावरे में 'ख़लीफ़ा' हो चुका हो। अटक जेल की जिन बारकों में ख़लीफ़ा को रखा जाता था, उनके बड़े हौफनाक वर्णन पंजाब की जेलों में प्रचलित थे, और उनके प्रचार

से दारोग़ा अमीचन्द का आतंक और भी बढ़ता जाता था।

दारोग़ा अमीचन्द की एक और बात भी मशहूर थी ! वह यह कि उनका चेहरा ऐसा रोबीला है कि मामूली क़ैदी तो उनकी शक्ल देख कर ही थर-थर काँप उठें, कहीं किसी की ओर वह एक नज़र देख दें तो बस उसके औसान ख़ता हो जाएँ...

यों अमीचन्द डीलडौल के साधारण थे। क़द मँझला, पर अकड़ कर चलते थे, शरीर कुछ भारी पर चाल में कुछ ऐसा कटाव-छँटाव और फुर्ती कि जब यह परेड पर निरीक्षण के लिए आते तो क़ैदी मानो अकस्मात् ही आधा क़दम पीछे हट जाते...

अमीचन्द थे तो खत्री, पर अपनी घनी मूँछें ऐसी उमेठ कर रखते थे कि ठाकुर ठकुराई भूल जाए। मोम लगा कर मूँछों की नोक का कसाव कुछ ऐसा तीखा रखते थे, मानो तारकशी का काम करने वाले किसी अच्छे कारीगर ने लोहे के तारों के लच्छे लेकर उन्हें बँट कर नोंक दे दी हो ...बात मशहूर थी कि दारोग़ा अपनी मूँछों को बँटते रहते हैं और तब तक सन्तुष्ट नहीं होते जब तक कि नीवू उठाकर मूँछों की नोंक पर उसे भोंक कर तसल्ली न कर लें कि नीबू उससे आर-पार छिद जाता है। मानो कोई जल्लाद रोज़ किसी को सूली पर चढ़ा कर देखा करे कि वह ठीक ज़मी है कि नहीं। लोग कहते ही तो थे, "दारोग़ा अमीचन्द ? वह तो पूरा जल्लाद है...उसकी मूँछें नहीं देखीं तुम ने ?"

क़िस्सा कोताह, जब मैं हरिपुर पहुँचा तो दारोग़ा अमीचन्द वहाँ नए-नए तैनात होकर आए थे। उन दिनों हज़ारा जेल में बहुत-से अकाली क़ैदी थे; बहुत दिनों से जेल वालों से इनकी चल रही थी और सब जानते थे कि इन्हीं को ठीक करने के लिए अटक के जल्लाद को वहाँ भेजा गया है। और इस चुनौती को अकालियों ने तत्काल स्वीकार कर लिया। जेल में तो यह ऊब से बचने का एक उपाय है, फिर अकाली तो अकाली ठहरे।

यों बात कुछ नहीं थी। अकाली लोग सवेरे खाने पर बैठे तो किसी एक अकाली की दाल की बाटी में कंकड़ निकले। दाल में कंकड़ निकलना साधारण बात ही माननी होगी, फिर जेल की दाल, मगर वह तो ठननी थी, कोई हीला चाहिए था। अकालियों ने खाना छोड़ दिया, कहा कि अब

तो रोटी वे तब खाएँगे जब दारोग़ा अमीचन्द आकर मुआइना कर लें कि खाना कितना खराब है। और जब लड़ाई छिड़ ही गई, तो वाज़िब और ग़ैरवाज़िब को कौन पूछता है ? लड़ाई में तो साधारण आदमी भी कुछ अनरीज़नेबल हो जाते हैं—फिर वाह गुरु का ख़ालसा। उन्होंने एक लम्बी सूची बनाई कि उनकी क्या-क्या शिकायतें या कह लीजिए माँगें हैं, और जब तक वे पूरी न हों, वे लोग जेल की डिसिप्लिन न मानेंगे ...हर अकाली को आधा-आधा सेर दूध मिले, रात को उनकी कोठरियाँ खुली रहें, मशक़्क़त उन्हें न दी जाए, दाल की बजाय महापरशाद मिले—छोटी-बड़ी बीस-एक माँगें उनकी तैयार हो गईं...

उधर दारोग़ा भी अपना लोहा मनवाने को उतावले थे, उन्होंने कहलवा दिया, क़ैदी क़ैदी है, उन्हें कोई फ़रियाद करनी हो तो परेड के दिन कर सकते हैं, धौंस कोई नहीं मानेगा और डिसिप्लिन न मानने पर सख़्त कार्रवाई की जाएगी।

बात बढ़ती ही गयी। अकालियों को एक पर एक सज़ाएँ मिलने लगीं। धीरे-धीरे मामला जेल से बाहर फैलने लगा, क्रमशः सूबे में यह बात फैल गई कि अमीचन्द अटकवाला हज़ारा में नई लड़ाई ले रहा है अकालियों से, अगर बात ने और तूल पकड़ा तो शायद लोग अमीचन्द न कह कर हज़ारेवाला कहने लगेंगे। दारोग़ा अमीचन्द खुश थे। उनका छोटा-सा शरीर कुछ और भी अकड़ कर चलता, पेंट की क्रीज़ कुछ और भी कटार की धार-सी तीखी नज़र आती, और मूँछों की ऐंठन तो ऐसी मानो नीबू तो क्या, अगर बिल्लौर की गोलियाँ भी होंगी तो बिंध जाएँगी।

लेकिन बात के फैलने के कुछ ऐसे ही असर हुए जिनके लिए दारोग़ा तैयार नहीं थे। सूबे-भर में उनका जो दबदबा था, जिसकी वजह से उन्हें इंस्पेक्टर जनरल भी जानते थे, उसका एक पहलू यह भी था कि एक महीना हो गया और अभी तक दारोग़ा अमीचन्द भी क़ैदियों का विद्रोह कुचल नहीं पाए ? तब या तो वह काम में ढील देने लगे हैं, या फिर मामला ही कुछ संगीन है, हड़ताल का नहीं, बलवे का है। इंस्पेक्टर जनरल ने तय किया कि वह मुआइना के लिए आवेंगे, और जेल को सूचना दे दी गई।

हम लोगों को यह बात तत्काल मालूम नहीं हुई। बल्कि हम से छिपाने की ख़ास वजह थी। दारोग़ा साहब ने सोचा कि जहाँ मुआइना एक मुसीबत है वहाँ एक मौक़ा भी है। अगर आई. जी. के आने पर वह उन्हें सूचित कर सकें कि बलवा उन्होंने शान्त कर दिया है, तो उनकी सफलता दूनी होगी और उनका रोब भी सीधे आई. जी. पर काफ़ी पड़ेगा—सामने-सामने की बात और होती है और किसी ज़िले में आई हुई रिपोर्ट की बात और। मगर बलवा दबे, तो न ! ज़ुल्म तो उन्होंने बहुत कर लिए, अकालियों पर कोई असर नहीं हुआ। मानो गैंडे की पीठ पर कोड़े पड़ रहे हों : सौ पड़ें तो क्या और हज़ार पड़ें तो क्या !

सहसा ऐलान हुआ कि सवेरे परेड होगी, और डिप्टी साहब अकालियों के वार्ड में जावेंगे। अकाली क़ैदी तैयार हो गए कि शायद कोई नया अत्याचार होने वाला है।

मगर परेड में जा कर डिप्टी साहब ने कहा, ''तुम लोग अब झगड़ा करके थके नहीं ? क्या फ़ायदा है और...जेल तो जेल है, यहाँ तो क़ानून मान के रहना पड़ेगा—क्यों मुसीबत उठाते हो ?'' उनकी नज़र क़तार पर फिरती हुई एक जगह रुक गई।

जिस पर रुकी, उसने उत्तर दिया, ''मुसीबत तो ऐसे भी हैं, वैसे भी, फिर क्यों न अकड़ कर रहा जाए ?''

डिप्टी साहब की आँखें दबे गुस्से से छोटी-छोटी हो आईं। मगर उन्होंने समस्वर में कहा, ''अच्छा, चलो, तुम लोगों ने बहुत दिखा लिया कि तुम अकाली हो, और मैं भी अटकवाला दारोग़ा अमीचन्द हूँ। अब काम की बात करो—तुम लोग क्या चाहते हो ?''

दो-तीन क़ैदियों ने कहा, ''हमारी माँगें आपको मालूम हैं, उन्हें पूरा कर दो बस।''

''पूरी शर्तें तो खुदा की भी नहीं मानी जातीं, तुम लोग आपस में सोच-विचार कर तै कर लो, और पाँच आदमियों का डेपुटेशन मेरे दफ़्तर में भेज दो, मैं विचार करके फैसला करूँगा।''

डिप्टी साहब चले गए। परेड बरख़ास्त हो गयी...उनकी मूँछों की चमकीली काली ऐंठन अकालियों के दिल में सूए-सी चुभती रही, पर उन्होंने

पाँच पंचों को चुनकर बातचीत चलाने का काम उन्हें सौंप दिया।

मसल मशहूर है, 'एक ख़ालसा सवा लाख'। फिर पाँच पंचों में अगर पच्चीस मत हो गए तो क्या अचम्भा ? बड़ी देर चखचख चली। कुछ की राय थी कि अब दारोग़ा सीधे रास्ते पर आ रहा है, यानी माँगों में और नई माँगें जोड़ कर जाना चाहिए। किसी का ख़्याल था कि नहीं, समझौता करना चाहता है तो कुछ रियायत तो होनी ही चाहिए। बीच में कई तरह के मत थे। फिर यह भी सवाल था कि रियायत हो तो किस या किन शर्तों पर, इसके बारे में भी मतभेद था।

अन्त में एक बुजुर्ग ने कहा, "भाइयो, मेरी बात मानो तो मैं एक सलाह दूँ।"

सबने पूछा, "क्या ?"

"वह यह कि हम लोग अपनी सब माँगें वापस ले लें, दारोग़ा से कहें कि जाओ, हम ने तुम्हें बख़्शा। जो सुलह करने आवे उससे बनिए की तरह मोल-तोल नहीं करना चाहिए।"

सब लोग अचकचाकर बूढ़े सरदार की ओर देखने लगे। क्या महीने-भर का सब संघर्ष व्यर्थ जाएगा ? जितनी सज़ाएँ, जितने अपमान उन्होंने सहे थे, एक बार उनकी आँखों के आगे दौड़ गए। एक ने कहा ही, "आपसे इसकी तवक़्क़ो नहीं थी।"

बूढ़े ने अविचलित भाव से कहा, "सिर्फ़ एक बात हम अपनी तरफ़ से रखें।"

"वह क्या ?"

"वह यह कि हमारा दारोग़ा से कोई झगड़ा नहीं है, मगर वह भी हम पर हेकड़ी जताना छोड़ दे। बस, एक बार वह हमारे सामने अपनी मूँछें नीची कर ले, फिर हम उसके सब क़ायदे-क़ानून मान लेंगे।'

बात बिलकुल अप्रत्याशित थी। सब थोड़ी देर चुप रहे। फिर किसी ने कहा, "हमको तो बात नहीं जँचती—लड़ाई को बीच में नहीं छोड़ना चाहिए। दारोग़ा का क्या है, कल को फिर मुकर जाए तो सारी तकलीफ़ें फिर शुरू से उठानी पड़ें—"

बूढ़े ने कहा, "वह बात तो शर्तें मनवाने पर भी हो सकती है—आज

मान ले, कल मुकर जाए तो फिर भूख हड़ताल हो।''

''मगर लड़ाई बीच में छोड़ना तो ख़ालसे का काम नहीं।''

''पर सरन आए दुश्मन को दबाना भी तो ठीक नहीं। मैं तो कहता हूँ कि एक बार आज़माकर तो देखो।''

अन्त में बात मान ली गई। पाँच का भी डेपुटेशन नहीं गया, केवल बूढ़ा सरदार अकेला भेजा गया। दफ़्तर में जाकर उसने कहा, ''डिप्टी साहब, आप सुलह करना चाहते हैं तो हम भी राज़ी हैं। हम अपनी सब माँगें वापस लेते हैं।''

डिप्टी साहब ने कुछ अचम्भे में मगर अपनी ख़ुशी को भी छिपाते हुए कहा, ''क्या ? वैसे चाहिए यही, जो काम लड़कर नहीं होता वह दबकर रहने से होता है। तुम राय साहब अमीचन्द को जानते नहीं। मैं क़ानून-वानून की परवाह नहीं करता। मैं चाहूँ तो तुम्हारी बैरक में पीपे के पीपे घी के भिजवा दूँ–चन्दन के बाग़ लगवा दूँ–हाँ, चन्दन के बाग़।''

''हमारी दरख़ास्त सिर्फ़ इतनी है कि आप हमारे सामने एक बार अपनी मूँछें नीची कर लें।''

''क्या ?'' दारोग़ा साहब की त्योरियाँ चढ़ गईं। मगर सामने शायद आई. जी. के दौरे का प्रोग्राम रखा था, तुरन्त ही सँभलकर बोले, ''तुम जा सकते हो, तुम्हारी दरख़ास्त पर ग़ौर करूँगा।''

दूसरे दिन सवेरे-सवेरे, जब पौ फटने के बाद जमादार ताले खड़का कर देखकर 'सब अच्छा,' चिल्लाकर अभी गए ही थे–बारकों की कोठरियों के दरवाज़े अभी खुले नहीं थे–दारोग़ा अमीचन्द सहसा अकालियों की बारक के फाटक पर पहुँचे। चारों ओर सन्नाटा था, दारोग़ा के साथ कोई अमला नहीं था, यहाँ तक कि चाभियाँ लिये चीफ़ हेडवार्डर भी नहीं। फाटक पर खड़े होते ही अकालियों के पंच भीतर उनके सामने आ गए।

दारोगा ने कहा, ''तुम लोगों की दरख़ास्त पर हमने विचार कर लिया है। हमें-तुम्हें आख़िर साथ रहना है–न तुम जेल छोड़कर भागे जा रहे हो, न हमीं सर्विस छोड़कर जा रहे हैं। फिर हेकड़ी की क्या बात ? आपस में तो खींचतान होती ही रहती है, उससे कोई छोटा थोड़े ही हो जाता है ? कभी हमने दबा लिया, तुम दब गए; कभी तुमने ज़ोर मारा तो हमने

पैंतरा बदल लिया। कभी हमने तुम्हारी गर्दन नाप ली, कभी तुम्हारे सामने हमने मूँछें नीची कर लीं–" कहते-कहते उन्होंने हाथ उठाया, अँगूठे और उँगली से मूँछों की नोकें दबाईं और गालों पर मलते हुए नीचे को मोड़ दिया। ऐंठन के बल तो भला क्या मिटते, पर मोम तो था ही, मूँछों के दाएँ-बाएँ दोनों गुच्छे ऐसे हो गए मानो फुल-चुही-सी बहुत छोटी मगर काली चिड़िया कीड़ा-वीड़ा पकड़ने को चोंच झुकाए हो। दारोग़ा ने कहा, "लो–इससे कुछ आता-जाता थोड़े ही है ? बस, अब हमारी सुलह, मैं अभी जमादार को भेजता हूँ कि वारक खोल दे–"

कहते-कहते वह लौट पड़े। अहाते के फाटक तक पहुँचने के पहले ही उन्होंने मूँछें फिर ऐंठकर पूर्ववत् कर ली थीं, एक हलकी-सी मुस्कान होंठों के कोनों को उभारकर मूँछों की ऐंठन को और बल दे रही थी। मन-ही-मन दारोग़ा साहब अपनी पीठ ठोंक रहे थे : किस सफ़ाई से हँसी-हँसी में उन्होंने सारी बात ही उड़ा दी–शर्त भी पूरी हो गई, कुछ बिगड़ा भी नहीं, तीन दिन बाद आकर आई. जी. देखेगा कि जेल में बिलकुल शान्ति है, राय साहब अमीचन्द के दबदबे के मुताबिक़ ही सब काम क़ायदे से और मुस्तैदी से हो रहा है। जब परेड लगेगी और दूसरे क़ैदियों की तरह अकाली भी क़तार बाँधकर खड़े होंगे, वह आई. जी. को उनके सामने गुज़रते हुए कहेंगे कि इन लोगों का मामला अब 'सेटल' हो गया है और सब जेल की डिसिप्लिन मान रहे हैं, तब कितनी बड़ी विजय का क्षण होगा वह...

उधर अकालियों की बारक में कुछ क़ैदी बूढ़े सरदार की ओर एकटक देख रहे थे। उनकी आँखों में प्रश्न था–क्या यही बात थी, बस ? इसमें कहाँ था विजय का सुख या कि समझौते की भी शान्ति ! दारोग़ा अमीचन्द तो उन्हें बनाकर चला गया–

कहानी तो इतनी ही है। लेकिन बात इससे आगे भी है। दारोग़ा अभी ड्योढ़ी तक नहीं पहुँचे होंगे कि दूर दूसरी सियासी बारक में हमें ख़बर मिल गई, दारोग़ा अमीचन्द ने अकालियों के सामने मूँछें नीची कर लीं। और ताले खुलने से पहले जेल के साढ़े छः हज़ार क़ैदियों को पता लग गया था कि दारोग़ा अमीचन्द अटकवाले ने अकालियों के सामने मूँछें नीची

कर लीं। दूसरे दिन आई. जी. के दौरे का ऐलान हुआ और तैयारी की परेड हुई, राय साहब अमीचन्द कतार देखते गुज़र रहे थे कि एक क़ैदी ने हाथ उठाकर नाक के दोनों ओर अँगूठा और उँगली जमा धीरे-धीरे ओठों के कोनों तक खींचे, जैसे कोई पसीना पोंछने के लिए करे, और उसकी इस हरकत पर सारी परेड के चेहरे पर एक मुस्कान दौड़ गई।

राय साहब अमीचन्द ने सहसा कड़े पड़ कर रूखे स्वर में पूछा, "क्या है ?" जिसे सुनकर अटक के ख़लीफ़ाओं की रूह काँप जाती थीं। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल कुछ आगे एक दूसरी जगह एक क़ैदी ने वैसी ही हरकत की, और अबकी बार हँसी और भी स्पष्ट हो गई।

दारोग़ा साहब बड़ा कड़ा चेहरा बनाए जल्दी से मुआइना समाप्त करके चले गए।

लेकिन तीसरे दिन जब आई. जी. आए और परेड की बिलकुल सीधी कतारों के सामने से गुज़रने लगे तो कई क़ैदियों ने एक साथ नाक के आस-पास पसीना पोंछा, और एक चौड़ी रूपहली हँसी कई कतारों के चेहरे खिला गई।

आई. जी. ने पूछा, "राय साहब अमीचन्द, क्या बात है–आपकी जेल की डिसिप्लिन बड़ी ढीली है–"

राय साहब ने डूबते-से स्वर में कहा, "सर, इस मामले पर दफ़्तर में–मुझे कुछ कानफ़िडेंशल"–और चुप रह गए।

आई. जी. ने कहा, "हूँ।" फिर मानो यह ध्यान करके कि राय साहब के अनुशासन को पुष्ट करना चाहिए, उन्होंने फिर कहा, "आफ़ कोर्स। वहीं बातें होंगी।"

आई. जी. के जाने के एक हफ़्ते बाद दारोग़ा अमीचन्द की बदली का ऑर्डर आ गया, क्योंकि हज़ारा जेल की डिसिप्लिन बिगड़ रही थी। उन्हें मुल्तान भेजा गया। पर वे वहाँ पहुँचे तो क़ैदियों को पहले से ख़बर थी–वह राय साहब अमीचन्द अटकवाले की नहीं, उस दारोग़ा की प्रतीक्षा कर रहे थे जिसने हज़ारा में क़ैदियों के आगे मूँछें नीची कर ली थीं। जल्दी ही वहाँ से उनकी बदली हुई; पर जहाँ भी वह गए, उनकी कीर्ति उनसे पहले पहुँची, और क़ैदियों का अनुशासन उनसे नहीं बन पड़ा। अन्त में

डिप्टी से फिर दारोग़ा होकर वह एक छोटी ज़िला जेल के इंचार्ज़ बनाए गए, मगर पंजाब-भर में ऐसी कोई जेल नहीं थी कि जिसे मूँछों वाला क़िस्सा न मालूम हो। हारकर दारोग़ा साहब ने रिटायर किए जाने की दरख़ास्त दी, और दारोग़ा के पद से ही पेंशन लेकर चले गए।

मैं जब जेल से छूटकर आया, तब वह सर्विस छोड़ गए थे। कहाँ, किस उपेक्षित कोने में उन्हें मुँह छिपाने लायक़ जगह मिली, यह पता नहीं। क़ैदियों के लिए चन्दन के बाग़ तो क्या, अपने लिए बबूल की छाँह भी बेचारे पा सके या नहीं, न मालूम। जेलों के ख़लीफ़ा भी बड़ी जल्दी उनका नाम तक भूल गए। लेकिन आज भी अगर कोई नए इकबारे क़ैदी से भी पूछे तो वह मुस्कराकर सिर हिला देगा कि हाँ, उसे उस दारोग़ा की बात मालूम है जिसने क़ैदियों के सामने मूँछें नीची कर ली थीं।

कमलेश्वर

कमलेश्वर (सन् 1932)– 'नई कहानी' के प्रवर्तकों में कमलेश्वर का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। आपने कहानी की नई विधा को ही नहीं सँवारा वरन् उसे आत्मकुंठा, घुटन और पलायनवादी कुहरे से निकालकर खुली वायु में लाकर नया अर्थ भी दिया है। अतएव आपकी कहानियाँ एक प्रकार की सोद्देश्यता लिये मध्यम वर्ग की मर्मवेदना, पराजय, अकेलापन, घुटन, आस्था-अनास्था को सफलता के साथ अभिव्यक्त कर सकी हैं। समाज में जो तीव्रगति से परिवर्तन हो रहे हैं तथा उन परिवर्तनों में यान्त्रिक युग के मानव के जीवन-मूल्य भी किस तेज़ी के साथ अपने असली रंग बदलकर नकली, थोथे, आडम्बरयुक्त आवरण ओढ़ते चले जा रहे हैं—इसका जीता-जागता चित्रण कमलेश्वर की कहानियों में देखा जा सकता है। 'कस्बे का आदमी', 'नीली झील', 'राजा निरबंसिया'', 'पीला गुलाब', 'जार्ज पंचम की नाक', 'दिल्ली में एक मौत,' 'मांस का दरिया' उनकी स्मरणीय कहानियाँ हैं। कमलेश्वर की कहानियों की विशेषताएँ हैं, प्रयासहीन शिल्प, भावानुकूल प्रभावशाली भाषा-शैली, सजग सामाजिक चेतना, उपयुक्त वातावरण का कुशलता के साथ निर्माण और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि।

'दिल्ली में एक मौत' यान्त्रिक युग के व्यस्त किन्तु कृत्रिम जीवन को आधार बनाकर लिखी गई वातावरण-प्रधान कहानी है। जन्म हो या मरण, हर्ष हो या विषाद, सुख हो या दुःख, आज का सभ्य कहा जाने वाला मनुष्य सहयोग-सहानुभूति के

नाम पर मात्र औपचारिकता ही निभाता है जिसमें भी सच्चाई कम दिखावा अधिक है। दूसरों के दुःख बँटाने की अपेक्षा अपने सुख, आराम और सुविधा पर उसका अधिक ध्यान है। नगर-जीवन की यही विडम्बना है जिसे कहानीकार ने सशक्त अभिव्यक्ति दी है। सेठ दीवानचन्द, जिनकी कृपा से मवानी जैसे कई लोगों को रोज़ी का ठिकाना मिल गया, जिनकी लड़की की शादी में हज़ारों की भीड़-भाड़ इकट्ठी हो गई थी, उन्हीं सेठ की अरथी में केवल सात आदमी ! और मरघट में स्कूटरों, टैक्सियों और कारों की भरमार जो जल्दी-से-जल्दी वहाँ से छूटकर अपने दफ्तरों में पहुँचने के लिए व्याकुल हो भरभरा रही हैं। किसे फुर्सत है कि वह बैठे और लाश को पूरी जलाकर ही घर लौटे ! न घरवालों को इतना समय है, न बाहरवालों को, क्योंकि यह सब देखने-सुनने वाला तो चला गया, सदैव के लिए।

दिल्ली में एक मौत

चारों तरफ कुहरा छाया हुआ है। सुबह के नौ बज चुके हैं, लेकिन पूरी दिल्ली धुन्ध में लिपटी हुई है। सड़कें नम हैं। पेड़ भीगे हुए हैं। कुछ भी साफ नहीं दिखाई देता। ज़िन्दगी की हलचल का पता आवाज़ों से लग रहा है। ये आवाज़ें कानों में बस गई हैं। घर के हर हिस्से से आवाज़ें आ रही हैं। वासवानी के नौकर ने रोज़ की तरह स्टोव जला लिया है, उसकी सनसनाहट दीवार के उस पार से आ रही है। बगलवाले कमरे में अतुल मवानी जूते पर पालिश कर रहा है—ऊपर सरदारजी मूँछों पर फिक्सो लगा रहे हैं—उनकी खिड़की के परदे के पार जलता हुआ बल्ब बड़े मोती की तरह चमक रहा है। सब दरवाज़े बन्द हैं, सब खिड़कियों पर परदे हैं, लेकिन हर हिस्से में ज़िन्दगी की खनक है। तिमंज़िले पर वासवानी ने बाथरूम का दरवाज़ा बन्द किया है और पाइप खोल दिया है।

कुहरे में बसें दौड़ रही हैं। जूँ-जूँ करते भारी टायरों की आवाज़ें दूर

से नज़दीक आती हैं और फिर दूर हो जाती हैं। मोटर रिक्शे बेहताशा भागे चले जा रहे हैं। टैक्सी का मीटर अभी किसी ने डाउन किया है। पड़ोस के डॉक्टर के यहाँ फोन की घंटी बज रही है और पिछवाड़े गली से गुज़रती हुई कुछ लड़कियाँ सुबह ही शिफ्ट पर जा रही हैं।

सख्त सर्दी है। सड़कें ठिठुरी हुई हैं और कोहरे के बादलों को चीरती हुई कारें और बसें हार्न बजाती हुई भाग रही हैं। सड़कों और पटरियों पर भीड़ है, पर कुहरे में लिपटा हुआ हर आदमी भटकती हुई रूह की तरह लग रहा है।

वे रूहें चुपचाप धुन्ध के समुद्र में बढ़ती जा रही हैं—बसों में भीड़ है। लोग ठंडी सीटों पर सिकुड़े बैठे हैं और कुछ लोग बीच में ही ईसा की तरह सलीब पर लटके हुए हैं—बाँहें पसारे, उनकी हथेलियों में कीलें नहीं, बस की बर्फीली, चमकदार छड़ें हैं।

और ऐसे में दूर से एक अरथी सड़क पर चली आ रही है।

इस अरथी की खबर अखबार में है। मैंने अभी-अभी पढ़ी है। इसी मौत की खबर होगी। अखबार में छपा है—आज रात करौलबाग के मशहूर और लोकप्रिय बिज़नेस मैगनेट सेठ दीवानचन्द की मौत इरविन अस्पताल में हो गई। उनका शव कोठी पर ले आया गया है। कल सुबह नौ बजे उनकी अरथी आर्यसमाज रोड से होती हुई पँचकुइयाँ श्मशान-भूमि में दाह-संस्कार के लिए जाएगी।

और इस वक्त सड़क पर आती हुई यह अरथी उन्हीं की होगी। कुछ लोग टोपियाँ लगाए और मफलर बाँधे खामोशी से पीछे-पीछे आ रहे हैं। उनकी चाल बहुत धीमी है। कुछ दिखाई पड़ रहा है, कुछ नहीं दिखाई पड़ रहा है, पर मुझे ऐसा लगता है कि अरथी के पीछे कुछ आदमी हैं।

मेरे दरवाज़े पर दस्तक होती है। मैं अखबार एक तरफ रखकर दरवाज़ा खोलता हूँ। अतुल मवानी सामने खड़ा है।

"यार, क्या मुसीबत है, आज कोई आयरन करने वाला भी नहीं आया, ज़रा अपना आयरन देना।" अतुल कहता है तो मुझे तसल्ली होती है। नहीं तो उसका चेहरा देखते ही मुझे खटका हुआ था कि कहीं शव-यात्रा में जाने का बवाल न खड़ा कर दे। मैं उसे फौरन आयरन दे देता हूँ और

निश्चिन्त हो जाता हूँ कि अतुल अब अपनी पेंट पर लोहा करेगा और दूतावासों के चक्कर काटने के लिए निकल जाएगा।

जब से मैंने अखबार में सेठ दीवानचन्द की मौत की खबर पढ़ी थी, मुझे हर क्षण यही खटका लगा था कि कहीं कोई आकर इस सर्दी में शव के साथ जाने की बात न कह दे। बिल्डिंग के सभी लोग उनसे परिचित थे और सभी शरीफ, दुनियादार आदमी थे।

तभी सरदारजी का नौकर ज़ीने से भड़भड़ाता हुआ आया और दरवाज़ा खोलकर बाहर जाने लगा ! अपने मन को और सहारा देने के लिए मैंने उसे पुकारा, "धर्मा ! कहाँ जा रहा है ?"

"सरदारजी के लिए मक्खन लेने।" उसने वहीं से जवाब दिया तो लगे हाथों लपककर मैंने भी अपनी सिगरेट मँगवाने के लिए उसे पैसे थमा दिए।

सरदारजी नाश्ते के लिए मक्खन मँगवा रहे हैं, इसका मतलब है वे भी शव-यात्रा में शामिल नहीं हो रहे हैं। मुझे कुछ राहत मिली। जब अतुल मवानी और सरदारजी का इरादा शव-यात्रा में जाने का नहीं है तो मेरा कोई सवाल ही नहीं उठता। इन दोनों का या वासवानी-परिवार का ही सेठ दीवानचन्द के यहाँ ज़्यादा आना-जाना था। मेरी तो चार-पाँच बार की मुलाकात-भर थी। अगर ये लोग ही शामिल नहीं हो रहे हैं तो मेरा सवाल ही नहीं उठता।

सामने बारजे पर मुझे मिसेज़ वासवानी दिखाई पड़ती हैं। उनके खूबसूरत चेहरे पर अजीब-सी सफेदी है और होंठों पर पिछली शाम की लिपस्टिक की हलकी लाली अभी भी मौजूद है। गाउन पहने हुए ही वह निकली हैं और अपना जूड़ा बाँध रही हैं। उनकी आवाज़ सुनाई पड़ती है, "डार्लिंग, ज़रा पेस्ट देना, प्लीज़..."

मुझे और राहत मिलती है। इसका मतलब है कि मिस्टर वासवानी भी मैयत में शामिल नहीं हो रहे हैं।

दूर आर्यसमाज रोड पर वह अरथी बहुत आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ती आ रही है–

अतुल मवानी मुझे आयरन लौटाने आता है। मैं आयरन लेकर दरवाज़ा

बन्द कर लेना चाहता हूँ, पर वह भीतर आकर खड़ा हो जाता है और कहता है, "तुमने सुना, दीवानचन्द की कल मौत हो गई ?"

"मैंने अखबार में पढ़ा है," मैं सीधा-सा जवाब देता हूँ, ताकि मौत की बात आगे न बढ़े। अतुल मवानी के चेहरे पर सफेदी झलक रही है, वह शेव कर चुका है। वह आगे कहता है, "बड़े भले आदमी थे दीवानचन्द।"

यह सुनकर मुझे लगता है कि अगर बात आगे बढ़ गई तो अभी शवयात्रा में शामिल होने की नैतिक ज़िम्मेदारी हो जाएगी, इसलिए मैं कहता हूँ, तुम्हारे उस काम का क्या हुआ ?"

"बस, मशीन आने-भर की देर है। आते ही अपना कमीशन तो खड़ा हो जाएगा। यह कमीशन का काम भी बड़ा बेहूदा है। पर किया क्या जाए ? आठ-दस मशीनें मेरे थ्रू निकल गईं तो अपना बिज़नेस शुरू कर दूँगा।" अतुल मवानी कह रहा है, "भाई शुरू-शुरू में जब मैं यहाँ आया था तो दीवानचन्दजी ने बड़ी मदद की थी मेरी। उन्हीं की वजह से कुछ काम-धाम मिल गया था। लोग बहुत मानते थे उन्हें।"

फिर दीवानचन्द का नाम सुनते ही मेरे कान खड़े हो जाते हैं। तभी खिड़की से सरदारजी सिर निकालकर पूछते हैं, "मिस्टर मवानी, कितने बजे चलना है ?"

"वक्त तो नौ बजे का था। शायद सर्दी और कुहरे की वजह से कुछ देर हो जाए।" वह कह रहा है और मुझे लगता है कि यह बात शव-यात्रा के बारे में ही है।

सरदारजी का नौकर धर्मा मुझे सिगरेट देकर जा चुका है और ऊपर मेज़ पर चाय लगा रहा है। तभी मिसेज़ वासवानी की आवाज़ सुनाई पड़ती है, "मेरे ख्याल से प्रमिला ज़रूर पहुँचेगी, क्यों डार्लिंग ?"

"पहुँचना तो चाहिए–तुम ज़रा जल्दी से तैयार हो जाओ।" कहते हुए मिस्टर वासवानी बारजे से गुज़र गए हैं।

अतुल मुझसे पूछ रहा है, "शाम को कॉफी-हाउस की तरफ आना होगा ?"

"शायद चला आऊं," कहते हुए मैं कम्बल लपेट लेता हूं और वह वापस अपने कमरे में चला जाता है। आधा मिनट बाद ही उसकी आवाज़

फिर आती है, "भई, बिजली आ रही है ?"

मैं जवाब दे देता हूँ, "हाँ, आ रही है।" मैं जानता हूँ कि वह इलैक्ट्रिक राड से पानी गरम कर रहा है, इसीलिए उसने यह पूछा है।

"पॉलिश।" बूट-पालिश वाला लड़का हर रोज़ की तरह अदब से आवाज़ लगाता है और सरदारजी उसे ऊपर से पुकार लेते हैं। लड़का बाहर बैठकर पॉलिश करने लगता है और वह अपने नौकर को हिदायतें दे रहे हैं, खाना ठीक एक बजे लेकर आना।—पापड़ भूनकर लाना और सलाद भी बना लेना।..."

मैं जानता हूँ, सरदारजी का नौकर पाजी है। वह कभी वक्त से खाना नहीं पहुँचाता और न उनके मन की चीज़ें ही पकाता है।

बाहर सड़क पर कुहरा अब भी घना है। सूरज की किरणों का पता नहीं है। कुलचे-छोले वाले वैष्णव ने अपनी रेड़ी लाकर खड़ी कर ली है। रोज़ की तरह वह प्लेटें सजा रहा है, उनकी खनखनाहट की आवाज़ आ रही है।

सात नम्बर की बस छूट रही है। सूलियों पर लटके ईसा उसमें चले जा रहे हैं और क्यू में खड़े और लोगों को कंडक्टर पेशगी टिकिट बाँट रहा है। हर बार जब भी वह पैसे वापस करता है तो रेज़गारी की खनक यहाँ तक आती है। धुन्ध में लिपटी रूहों के बीच काली वरदीवाला कंडक्टर शैतान की तरह लग रहा है।

और अरथी अब कुछ और पास, आ गई है।

"नीली साड़ी पहन लूँ ?" मिसेज़ वासवानी पूछ रही हैं।

वासवानी के जवाब देने की घुटी-घुटी आवाज़ से लग रहा है कि वह टाई की नॉट ठीक कर रहा है।

सरदारजी के नौकर ने उनका सूट ब्रुश से साफ करके हेंगर पर लटका दिया है। और सरदारजी शीशे के सामने खड़े पगड़ी बाँध रहे हैं।

अतुल मवानी फिर मेरे सामने से निकला है। पोर्ट फोलियो उसके हाथ में है। पिछले महीने बनवाया हुआ सूट उसने पहन रखा है। उसके चेहरे पर ताज़गी और जूतों पर चमक है। आते ही वह मुझसे पूछता है, "तुम नहीं चल रहे हो ?" और मैं जब तक पूछूँ कि कहाँ चलने को वह

पूछ रहा है कि वह सरदारजी को आवाज़ लगाता है, "आइए, सरदारजी ! अब देर हो रही है। दस बज चुका है।"

दो मिनट बाद ही सरदारजी तैयार होकर नीचे आते हैं कि वासवानी ऊपर से ही मवानी का सूट देखकर पूछता है, "ये सूट किधर सिलवाया ?"

"उधर खान मार्केट में।"

"बहुत अच्छा सिला है। टेलर का पता हमें भी देना।" फिर वह अपनी मिसेज़ को पुकारता है, "अब आ जाओ, डियर।–अच्छा मैं नीचे खड़ा हूँ, तुम आओ।" कहता हुआ वह भी मवानी और सरदारजी के पास आ जाता है और सूट को हाथ लगाते हुए पूछता है, "लाइनिंग इंडियन है।"

"इंग्लिश।"

"बहुत अच्छा फिटिंग है।" कहते हुए वह टेलर का पता डायरी में नोट करता है। मिसेज़ वासवानी बारजे पर दिखाई पड़ती हैं–नम और सर्द सुबह में उनका रूप और निखर आया है। सरदारजी धीरे से मवानी को आँख का इशारा करके सीटी बजाने लगते हैं।

अरथी अब सड़क पर ठीक मेरे कमरे के नीचे है। उसके साथ कुछेक आदमी हैं, एक-दो कारें भी हैं, जो धीरे-धीरे रेंग रही हैं। लोग बातों में मशगूल हैं।

मिसेज़ वासवानी जूड़े में फूल लगाते हुए नीचे उतरती हैं तो सरदारजी अपनी जेब का रूमाल ठीक करने लगते हैं। और इससे पहले कि वे लोग बाहर जाएँ वासवानी मेरे से पूछता है, "आप नहीं चल रहे ?"

"आप चलिए, मैं आ रहा हूँ," मैं कहता हूँ पर दूसरे ही क्षण मुझे लगता है कि उसने मुझसे कहाँ चलने को कहा है ? मैं अभी खड़ा सोच ही रहा हूँ कि वे चारों घर के बाहर हो जाते हैं।

अरथी कुछ और आगे निकल गई है। एक कार पीछे से आती है और अरथी के पास धीमी होती है। चलाने वाले साहब शव-यात्रा में पैदल चलने वाले एक आदमी से कुछ बातें करते हैं और कार सर्र से आगे बढ़ जाती है। अरथी के साथ पीछे जाने वाली दोनों कारें भी उसी कार के पीछे सरसराती हुई चली जाती हैं।

मिसेज़ वासवानी और वे तीनों लोग टैक्सी स्टैंड की ओर जा रहे हैं।

मैं उन्हें देखता रहता हूँ। मिसेज़ वासवानी ने फर-कालर डाल रखा है और शायद सरदारजी अपने चमड़े के दस्ताने उन्हें दे रहे हैं या दिखा रहे हैं। टैक्सी ड्राइवर आगे बढ़कर दरवाज़ा खोलता है और वे चारो टैक्सी में बैठ जाते हैं। अब टैक्सी इधर ही आ रही है और उसमें से खिलखिलाने की आवाज़ मुझे सुनाई पड़ रही है। वासवानी आगे सड़क पर जाती अरथी की ओर इशारा करते हुए ड्राइवर को कुछ बता रहा है।

मैं चुपचाप खड़ा देख रहा हूँ और अब न जाने क्यों मुझे मन में लग रहा है कि दीवानचन्द की शव-यात्रा में कम से कम मुझे तो शामिल हो ही जाना चाहिए था। उनके लड़के से मेरी खासी जान-पहचान है और ऐसे मौके पर दुश्मन का साथ भी दिया जाता है। सर्दी की वजह से मेरी हिम्मत छूट रही है—पर मन में कहीं शव-यात्रा में शामिल होने की बात भीतर ही भीतर कौंच रही है।

उन चारों की टैक्सी अरथी के पास धीमी होती है। मवानी गरदन निकालकर कुछ कहता है और दाहिने से रास्ता काटते हुए टैक्सी आगे बढ़ जाती है।

मुझे धक्का-सा लगता है और मैं ओवरकोट पहनकर, चप्पलें डालकर नीचे उतर आता हूँ। मुझे मेरे कदम अपने-आप अरथी के पास पहुँचा देते हैं और मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे चलने लगता हूँ। चार आदमी कन्धा दिए हुए हैं और सात आदमी साथ चल रहे हैं—सातवाँ मैं ही हूँ। और मैं सोच रहा हूँ कि आदमी के मरते ही कितना फर्क पड़ जाता है। पिछले साल ही दीवानचन्द ने अपनी लड़की की शादी की थी तो हज़ारों की भीड़ थी। कोठी के बाहर कारों की लाइन लगी हुई थी...

मैं अरथी के साथ-साथ लिंक रोड पर पहुँच चुका हूँ। अगले मोड़ पर पँचकुइयाँ श्मशान-भूमि है।

और जैसे ही अरथी मोड़ पर घूमती है, लोगों की भीड़ और कारों की कतार मुझे दिखाई देने लगती है। कुछ स्कूटर भी खड़े हैं। औरतों की भीड़ एक तरफ खड़ी है। उनकी बातों की ऊँची ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही हैं। उनके खड़े होने में वही लचक है जो कनाट प्लेस में दिखाई पड़ती है। सभी के जूड़ों के स्टाइल अलग-अलग हैं। मरदों की भीड़ से सिगरेट

का धुआँ उठ-उठकर कुहरे में घुला जा रहा है और बात करती हुई औरतों के लाल-लाल होंठ और सफेद दाँत चमक रहे हैं और उनकी आँखों में एक गरूर है...

अरथी को बाहर बने चबूतरे पर रख दिया गया है। अब खामोशी छा गई है। इधर-उधर बिखरी हुई भीड़ शव के इर्द-गिर्द जमा हो गई है और कारों के शोफर हाथों में फूलों के गुलदस्ते और मालाएँ लिये अपनी मालकिनों की नज़रों का इन्तज़ार कर रहे हैं।

मेरी नज़र वासवानी पर पड़ती है। वह अपनी मिसेज़ को आँख के इशारे से शव के पास जाने को कह रहा है और वह है कि एक औरत के साथ खड़ी बात कर रही है। सरदारजी और अतुल मवानी भी वहीं खड़े हुए हैं। शव का मुँह खोल दिया गया है और अब औरतें फूल और मालाएँ उसके इर्द-गिर्द रखती जा रही हैं। शोफर खाली होकर अब कारों के पास खड़े सिगरेट पी रहे हैं।

एक महिला माला रखकर कोट की जेब से रूमाल निकालती है और आँखों पर रखकर नाक सुरसुराने लगती है और पीछे हट जाती है।

और अब सभी औरतों ने रूमाल निकाल लिये हैं और उनकी नाकों से आवाज़ें आ रही हैं।

कुछ आदमियों ने अगरबत्तियाँ जलाकर शव के सिरहाने रख दी हैं। वे निश्चल खड़े हैं।

आवाज़ों से लग रहा है कि औरतों के दिल को ज़्यादा सदमा पहुँचा है।

अतुल मवानी अपने पोर्टफोलियो से कोई कागज़ निकालकर वासवानी को दिखा रहे हैं। मेरे ख्याल से वह पासपोर्ट का फार्म है।

अब शव को भीतर श्मशान-भूमि में ले जाया जा रहा है। भीड़ फाटक के बाहर खड़ी देख रही है। शोफरों ने सिगरेटें या तो पी लीं या बुझा दी हैं और वे अपनी-अपनी कारों के पास तैनात हैं।

शव अब भीतर पहुँच चुका है।

मातमपुरसी के लिए आदमी और औरतें अब बाहर की तरफ लौट रहे हैं।

कारों के दरवाज़े खुलने और बन्द होने की आवाज़ें आ रही हैं। स्कूटर स्टार्ट हो रहे हैं और कुछ लोग रीडिंग रोड बस स्टाप की ओर बढ़ रहे हैं।

कुहरा अभी भी घना है। सड़क से बसें गुज़र रही हैं और मिसेज़ वासवानी कह रही हैं, "प्रमिला ने शाम को बुलाया है, चलोगे न डियर ? कार आ जाएगी। ठीक है न ?"

वासवानी स्वीकृति में सिर हिला रहा है।

कारों में जाती हुई औरतें मुस्कराते हुए एक-दूसरे से विदा ले रही हैं और बाई-बाई की कुछ-एक आवाज़ें आ रही हैं। कारें स्टार्ट होकर जा रही हैं।

अतुल मवानी और सरदारजी भी रीडिंग रोड, बस स्टाप की ओर बढ़ गए हैं और मैं खड़ा सोच रहा हूँ कि अगर मैं भी तैयार होकर आया होता तो यहीं से सीधा काम पर निकल जाता। लेकिन अब तो साढ़े ग्यारह बज चुके हैं।

चिता में आग लगा दी गई है और चार-पाँच आदमी पेड़ के नीचे पड़ी बेंच पर बैठे हुए हैं। मेरी तरह वे भी यूँ ही चले आए हैं। उन्होंने ज़रूर छुट्टी ले रखी होगी, नहीं तो वे भी तैयार होकर आते।

मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि घर जाकर तैयार होकर दफ्तर जाऊँ या अब एक मौत का बहाना बनाकर आज छुट्टी ही ले लूँ—आखिर मौत तो हुई ही है और मैं शव-यात्रा में शामिल भी हुआ हूँ।

हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई (सन् 1928-1984 ई.)–नई कहानी-विधा का दूसरा पक्ष व्यंग्य-प्रधान है और परसाईजी का नाम व्यंग्य-प्रधान कथाकारों में प्रथम है। आप जीवन और समाज के ऊपर लगे झूठे मुखौटों पर खुलकर किन्तु गहरे आघात करने में सिद्धहस्त हैं। संक्रान्ति के इस युग में सम्पन्न वर्ग की संकीर्णता, शोषण-नीति, अधिकारी वर्ग की चुस्ती और चालाकी, मक्कारी और बेईमानी, राजनीतिक जीवन के पाखंडपूर्ण व्यवहार और भ्रष्टाचार आदि से पीसता आज का सामर्थ्यहीन मानव मूर्त से अमूर्त होकर किस प्रकार फाइलों के जंगल में डूबकर त्रस्त, असहाय बना अपनी नियति के भावी संकेतों की ओर देख रहा है, इसका चित्रण 'भोलाराम का जीव' कहानी में कहानीकार ने बड़ी खूबी के साथ किया है। इसके अतिरिक्त आपकी अन्य कहानियाँ 'जैसे उनके दिन फिरे', 'आमरण अनशन', 'बैताल की कथा' आदि काफी लोकप्रिय हुई हैं। व्यंग्य और परिहास से पूर्ण चुस्त भाषा-शैली, सामाजिक जागरूकता, स्वस्थ-अकृत्रिम मानवीय सम्बन्धों पर आधारित समाज-संरचना का ध्येय–आपकी कहानियों की विशेषताएँ हैं। स्वतन्त्रता के पच्चीस वर्षों की घुटन, छल और विकृतियों को साहस और सच्चाई के साथ नंगा कर रख देने का सामर्थ्य है तो वह है परसाईजी में जिनकी कहानियाँ निष्कपट इनसान की मूक पीड़ा को मेटने के लिए कृत-संकल्प आगे बढ़ रही हैं।

भोलाराम का जीव

ऐसा कभी नहीं हुआ था...

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास-स्थान अलाट करते आ रहे थे। पर ऐसा कभी नहीं हुआ था।

सामने बैठे चित्रगुप्त बार-बार चश्मा पोंछ, बार-बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर देख रहे थे। गलती पकड़ में ही नहीं आ रही थी। आखिर उन्होंने खीझकर रजिस्टर इतने ज़ोरों से बन्द किया कि मक्खी चपेट में आ गई। उसे निकालते हुए वे बोले, "महाराज, रिकार्ड सब ठीक है। भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, पर यहाँ अभी तक नहीं पहुँचा।"

धर्मराज ने पूछा, "और वह दूत कहाँ है ?"

"महाराज, वह भी लापता है।"

इसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बड़ा बदहवास-सा वहाँ आया। उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भय के कारण और भी विकृत हो गया था। उसे देखते ही चित्रगुप्त चिल्ला उठे, "अरे, तू कहाँ रहा इतने दिन ? भोलाराम का जीव कहाँ है ?"

यमदूत हाथ जोड़कर बोला, "दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया। आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर इस बार भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह को त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरम्भ की। नगर के बाहर ज्योंही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु-तरंग पर सवार हुआ त्योंही वह मेरी चंगुल से छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया। इन पाँच दिनों में मैंने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर उसका कहीं पता न चला।"

धर्मराज क्रोध से बोले, "मूर्ख, जीवों को लाते-लाते बूढ़ा हो गया, फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया।"

दूत ने सिर झुकाकर कहा, "महाराज, मेरी सावधानी में बिलकुल कसर नहीं थी। मेरे इन अभ्यस्त हाथों से अच्छे-अच्छे वकील भी नहीं छूट सके,

पर इस बार तो कोई इन्द्रजाल ही हो गया।"

चित्रगुप्त ने कहा, "महाराज, आजकल पृथ्वी पर इसका व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को फल भेजते हैं, और वे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। होज़री के पार्सलों के मोज़े रेलवे आफिसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डब्बे के डब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनीतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने, मरने के बाद, खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया ?"

धर्मराज ने व्यंग्य से चित्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा, "तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गई। भला, भोलाराम जैसे नगण्य दीन आदमी से किसी को क्या लेना-देना ?"

इसी समय कहीं से घूमते-घामते नारद मुनि वहाँ आ गए। धर्मराज को गुमसुम बैठे देख बोले, "क्यों धर्मराज, कैसे चिन्तित बैठे हैं ? क्या नरक में निवास-स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई ?"

धर्मराज ने कहा, "वह समस्या तो कभी की हल हो गई। नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गए हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनाईं। बड़े-बड़े इंजीनियर भी आ गए हैं जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवरसीयर हैं, जिन्होंने उन मज़दूरों की हाज़िरी भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गए ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें तान दी हैं। वह समस्या तो हल हो गई, पर एक बड़ी विकट उलझन आ गई है। भोलाराम नाम के एक आदमी की पाँच दिन पहले मृत्यु हुई। उसके जीव को यमदूत यहाँ ला रहा था, कि जीव इसे रास्ते में चकमा देकर भाग गया। इसने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर वह कहीं नहीं मिला। अगर ऐसा होने लगा, तो पाप-पुण्य का भेद ही मिट जाएगा !"

नारद ने पूछा, "उस पर इनकमटैक्स तो बकाया नहीं था ? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।"

चित्रगुप्त ने कहा, "इनकम होती तो टैक्स होता। भुखमरा था।"

नारद बोले, "मामला बड़ा दिलचस्प है। अच्छा मुझे उसका नाम, पता

तो बतलाओ। मैं पृथ्वी पर जाता हूँ।''

चित्रगुप्त ने रजिस्टर देखकर बतलाया, ''भोलाराम नाम था उसका। जबलपुर शहर में घमापुर मुहल्ले में नाले के किनारे एक डेढ़ कमरे के टूटे-फूटे मकान में वह परिवार-समेत रहता था। उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के और एक लड़की। उम्र लगभग 60 वर्ष। सरकारी नौकर था। पाँच साल पहले रिटायर हो गया था, मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया था, इसलिए मकान-मालिक उसे निकालना चाहता था। इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड़ दिया। आज पाँचवाँ दिन है। सम्भव है कि अगर मकान-मालिक वास्तविक मकान-मालिक है, तो उसने भोलाराम के मरते ही, उसके परिवार को निकाल दिया होगा। इसलिए आपको परिवार की तलाश में काफी घूमना पड़ेगा।''

माँ-बेटी के सम्मिलित क्रन्दन से ही नारद भोलाराम का मकान पहचान गए।

द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज़ लगाई, ''नारायण...नारायण !'' लड़की ने देखकर कहा, ''आगे जाओ, महाराज।''

नारद ने कहा, ''मुझे भिक्षा नहीं चाहिए, मुझे भोलाराम के बारे में कुछ पूछ-ताछ करनी है। अपनी माँ को ज़रा बाहर भेजो बेटी !''

भोलाराम की पत्नी बाहर आई। नारद ने कहा, ''माता, भोलाराम को क्या बीमारी थी ?''

''क्या बताऊँ ? गरीबी की बीमारी थी। पाँच साल हो गए, पेंशन पर बैठे थे, पर पेंशन अभी तक नहीं मिली। हर 10-15 दिन में एक दरखास्त देते थे, पर वहाँ से तो जवाब ही नहीं आता था और आता तो यही कि तुम्हारी पेंशन के मामले पर विचार हो रहा है। इन पाँच सालों में सब गहने बेचकर हम लोग खा गए। फिर बर्तन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाके होने लगे थे। चिन्ता में घुलते-घुलते और भूखों मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दिया।''

नारद ने कहा, ''क्या करोगी माँ ? उनकी इतनी ही उम्र थी...''

''ऐसा मत कहो, महाराज। उम्र तो बहुत थी। 50-60 रुपया महीना

पेंशन मिलती तो कुछ और काम कहीं करके गुज़ारा हो जाता। पर क्या करें ? पाँच साल नौकरी से बैठे हो गए और अभी तक एक कौड़ी नहीं मिली।''

दुःख की कथा सुनने की फुरसत नारद को थी नहीं। वे अपने मुद्दे पर आए, ''माँ, यह तो बताओ कि यहाँ किसी से क्या उनका विशेष प्रेम था, जिसमें उनका जी लगा हो ?''

पत्नी बोली, ''लगाव तो महाराज, बाल-बच्चों से ही होता है...''

''नहीं, परिवार के बाहर भी हो सकता है। मेरा मतलब है, कोई स्त्री...''

स्त्री ने गुर्राकर नारद की ओर देखा। बोली, ''बको मत महाराज ! साधु हो, कोई लुच्चे-लफंगे नहीं हो। ज़िन्दगी-भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री को आँख उठाकर नहीं देखा।''

नारद हँसकर बोले, ''हाँ, तुम्हारा यह सोचना ठीक ही है। यही भ्रम अच्छी गृहस्थी का आधार है। अच्छा माता, मैं चला।'' व्यंग्य समझने की असमर्थता ने नारद को सती के क्रोध की ज्वाला से बचा लिया।

स्त्री ने कहा, ''महाराज, आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरुष हैं। कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेंशन मिल जाए ? इन बच्चों का पेट कुछ दिन भर जाए ?''

नारद को दया आ गई थी। वे कहने लगे, ''साधुओं की बात कौन मानता है ? मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं। फिर भी मैं सरकारी दफ्तर में जाऊँगा और कोशिश करूँगा।''

वहाँ से चलकर नारद सरकारी दफ्तर में पहुँचे। वहाँ पहले ही कमरे में बैठे बाबू से उन्होंने भोलाराम के केस के बारे में बातें कीं। उस बाबू ने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा और बोला, ''भोलाराम ने दरखास्तें तो भेजी थीं, पर उन पर वजन नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गई होंगी।''

नारद ने कहा, ''भई, ये बहुत-से पेपरवेट तो रखे हैं; इन्हें क्यों नहीं रख दिया ?''

बाबू हँसा, ''आप साधु हैं, आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती। दरखास्तें पेपरवेट से नहीं दबतीं...खैर, आप उस कमरे में बैठे बाबू से

मिलिए।"

नारद उस बाबू के पास गए। उसने तीसरे के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास, चौथे ने पाँचवें के पास। जब नारद 25-30 बाबुओं और अफसरों के पास गए आए तब एक चपरासी ने कहा, "महाराज, आप क्यों इस झंझट में पड़ गए। आप अगर साल-भर भी यहाँ चक्कर लगाते रहें, तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए। उन्हें खुश कर लिया, तो अभी काम हो जाएगा।"

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे। बाहर चपरासी ऊँघ रहे थे, इसलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं। उन्हें एकदम बिना 'विज़िटिंग कार्ड' के आया देख साहब बड़े नाराज़ हुए। बोले, "इसे कोई मन्दिर-वन्दिर समझ लिया है क्या ? धड़धड़ाते चले आए ! चिट क्यों नहीं भेजी ?"

नारद ने कहा, "कैसे भेजता ? चपरासी सो रहा है।"

"क्या काम है ?" साहब ने रोब से पूछा।

नारद ने भोलाराम का पेंशन-केस बतलाया।

साहब बोले, "आप हैं बैरागी। दफ्तरों के रीति-रिवाज नहीं जानते। असल में भोलाराम ने गलती की। भई, यह भी मन्दिर है। यहाँ भी दान-पुण्य करना पड़ता है, भेंट चढ़ानी पड़ती है। आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरखास्तें उड़ रही हैं, उन पर वज़न रखिए।"

नारद ने सोचा कि फिर यहाँ वज़न की समस्या खड़ी हो गई। साहब बोले, "भई, सरकारी पैसे का मामला है। पेंशन का केस बीसों दफ्तरों में जाता है। देर लग ही जाती है। हज़ारों बार एक ही बात को हज़ार जगह लिखना पड़ता है, तब पक्की होती है। जितनी पेंशन मिलती है, उतनी कीमत की स्टेशनरी लग जाती है। हाँ, जल्दी भी हो सकती है, मगर..." साहब रुके।

नारद ने कहा, "मगर क्या ?"

साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा, "मगर वज़न चाहिए। आप समझे नहीं। जैसे आपकी यह सुन्दर वीणा है, इसका भी वज़न भोलाराम की दरखास्त पर रखा जा सकता है। मेरी लड़की गाना-बजाना सीखती है। यह मैं उसे दे दूँगा। साधु-सन्तों की वीणा से तो अच्छे स्वर निकलते

हैं। लड़की जल्दी संगीत सीख गई तो उसकी शादी हो जाएगी।''

नारद अपनी वीणा छिनते देख ज़रा घबराए। पर फिर सँभलकर उन्होंने वीणा टेबल पर रखकर कहा, ''यह लीजिए। अब ज़रा जल्दी उसकी पेंशन का ऑर्डर निकाल दीजिए।''

साहब ने प्रसन्नता से उन्हें कुर्सी दी, वीणा को एक कोने में रखा और घंटी बजाई। चपरासी हाज़िर हुआ।

साहब ने हुक्म दिया, ''बड़े बाबू से भोलाराम के केस की फाइल लाओ।''

थोड़ी देर बाद चपरासी भोलाराम की 100-150 दरखास्तों से भरी फाइल लेकर आया। उसमें पेंशन के कागज़ात भी थे। साहब ने फाइल पर नाम देखा और निश्चित करने के लिए पूछा, ''क्या नाम बताया साधुजी, आपने ?''

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनता है। इसलिए ज़ोर से बोले, ''भोलाराम।''

सहसा फाइल में से आवाज़ आई, ''कौन पुकार रहा है मुझे ? पोस्टमैन है क्या ? पेंशन का ऑर्डर आ गया ?''

साहब डर कर कुर्सी से लुढ़क गए। नारद भी चौंके। पर दूसरे क्षण बात समझ गए। बोले, ''भोलाराम, तुम क्या भोलाराम के जीव हो ?''

''हाँ।'' आवाज़ आई।

नारद ने कहा, ''मैं नारद हूँ। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। चलो स्वर्ग में तुम्हारा इन्तज़ार हो रहा है।''

आवाज़ आई, ''मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरखास्तों में अटका हूँ। वहीं मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरखास्तों को छोड़कर नहीं जा सकता।''

मोहन राकेश

मोहन राकेश (1925-1973)–*मोहन राकेश का जन्म अमृतसर में हुआ। इनके पिता वकील होते हुए भी साहित्यानुरागी थे। अतः इन्हें बचपन में ही घर में पर्याप्त साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ। सोलह वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त हो गया और तब से ही जीवन में संघर्ष प्रारम्भ हुआ। आत्म-निर्भर रहकर इन्होंने एम. ए. तक की शिक्षा पूरी की और यूनिवर्सिटी से छात्रवृत्ति प्राप्त की। परन्तु देश का विभाजन हो जाने से जीवन फिर से विशृंखल हो गया। जीवन का नए सिरे से प्रारम्भ हुआ। पाँच-छः वर्ष बम्बई, दिल्ली और शिमला में बिताने के बाद राकेश जी डी. ए. वी. कॉलेज, जालन्धर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए और वहाँ चार वर्ष तक कार्य किया। वे 'सारिका' के सम्पादक भी रहे।*

मोहन राकेश उन कथाकारों में हैं जिन्होंने कहानी को आधुनिकता की नई दिशा प्रदान की है। इनकी कुछ कहानियाँ हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती हैं। आपकी सभी कहानियों का संग्रह 'मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ' नाम से प्रकाशित हुआ है। नाटक के क्षेत्र में भी आपका योगदान महत्त्वपूर्ण माना गया है। आपको 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक पर संगीत अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1973 में अचानक हृदयगति रुक जाने से आपका देहान्त हो गया।

वारिस

घड़ी में तीन बजते ही सीढ़ियों पर लाठी की खट-खट होने लगती और मास्टरजी अपने गेरुआ बाने में ऊपर आते दिखाई देते। खट-खट आवाज़ सुनते ही भागकर बैठक में पहुंच जाते और अपनी कॉपियां और किताबें ठीक करते हुए ड्योढ़ी की तरफ़ देखने लगते। घड़ी तीन बजा न चुकी होती, तो उनके ऊपर पहुंचते-पहुंचते बजा देती। मैं बहन के कान के पास मुंह ले जाकर कहता, "एक-दो-तीन !..."

और मास्टरजी बैठक में पहुंच जाते। अगर घड़ी उनके वहां पहुंचने से दो-तीन मिनट पहले तीन बजा चुकी होती, तो वे उस पर शिकायत की एक नज़र डालते, भरकर रखे हुए गिलास में से दो घूंट पानी पीते और पढ़ाने बैठ जाते। मगर बैठकर भी दो-एक बार उनकी नज़र ऊपर हमारी दीवार-घड़ी की तरफ़ उठती, फिर अपने हाथ पर लगी हुई बड़े गोल डायल की पुरानी पीली-सी घड़ी पर पड़ती और वे 'हुं' या 'त्चत्' की आवाज़ से अपना असंतोष प्रकट करते—जाने अपने प्रति, अपनी घड़ी के प्रति या हमारी घड़ी के प्रति।

हमें मैट्रिक की परीक्षा देनी थी और वे हमें अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए आते थे। बहन मुझसे एक साल बड़ी थी, मगर उसने उसी साल ए, बी, सी से अंग्रेज़ी सीखी थी। मैं भी अंग्रेज़ी इतनी ही जानता था कि बिना हिचकिचाहट के 'वंडरफ़ुल' के ये हिज्जे बता देता था—डब्लू ए एन, डी ओ आर, एफ यू डबल एल—वंडरफुल ! मास्टरजी कविता बहुत उत्साह के साथ पढ़ाते थे। वे टेनीसन, ब्राउनिंग और स्कॉट की पंक्तियों की व्याख्या करते हुए जैसे कहीं और ही पहुंच जाते थे। उनकी आंखें चमकने लगती थीं और दोनों हाथ हिलने लगते थे। भाषा इनके मुंह से ऐसी निकलती थी जैसे खुद कविता कर रहे हों। मुझे कई बार कविता की पंक्ति तो समझ में आ जाती थी, उनकी व्याख्या समझ में नहीं आती। मैं मेज़ के नीचे से बहन के टख़नों पर ठोकर मारने लगता। ऊपर से चेहरा गंभीर बनाए रहता। ठोकर मारना इसलिए ज़रूरी था कि अगर मैं ध्यान से पढ़ने देता, तो वह बीच में मास्टरजी से कोई सवाल पूछ लेती थी जिससे ज़ाहिर

होता था कि बात उसकी समझ में आ रही है, और इस तरह अपनी हतक होती थी।

किताब पढ़कर मास्टरजी हमसे अनुवाद कराते। अनुवाद के पैसेज वे किसी कविता में से नहीं देते थे, ज़बानी लिखाते थे। उनमें कई बड़े शब्द होते जो अपनी समझ में ही न आते। वे लिखाते :

"भावना जीवन की हरियाली है। भावना-विहीन जीवन एक मरुस्थल है, जहां कोई अंकुर नहीं फूटता।"

हम पहले उनसे भावना की अंग्रेज़ी पूछते, फिर अनुवाद करते :

"सेंटीमेंट इज़ लाइफ़्स वेजीटेबल। सेंटीमेंटलेस लाइफ़ इज़ ए डेज़र्ट ह्वेयर ग्रास डज़ नॉट ग्रो।"

बहन संशोधन करती कि 'डज़ नॉट ग्रो' नहीं, 'डू नाट ग्रो' होना चाहिए, ग्रास 'सिंगुलर' नहीं 'प्लूरल' है। मैं उसके हाथ पर मुक्का मार देता कि कल ए. बी. सी. सीखने वाली लड़की आज मेरी अंग्रेज़ी दुरुस्त करती है। वह मेरे बाल पकड़ लेती कि एक साल छोटा होकर यह लड़का बड़ी बहन के हाथ पर मुक्का मारता है ! मगर जब मास्टरजी फ़ैसला कर देते कि 'डू नाट ग्रो' नहीं, 'डज़ नाट ग्रो' ठीक है तो मैं अपने अंग्रेज़ी के ज्ञान पर फूल उठता और बहन का चेहरा लटक जाता, हालांकि मार-पीट के मामले में डांट मुझी को पड़ती।

मास्टरजी के आने का समय जितना निश्चित था, जाने का समय उतना ही अनिश्चित था। वे कभी डेढ़ घंटा और कभी दो घंटे पढ़ाते रहते थे। पढ़ते-पढ़ते पांच बजने को आ जाते तो मेरे लिए 'नाउन' और 'एडजेक्टिव' में फ़र्क करना मुश्किल हो जाता। मैं जम्हाइयां लेता और बार-बार ऊबकर घड़ी की तरफ़ देखता। मगर मास्टरजी उस समय 'पास्ट पार्टीसिपल' और 'परफ़ेक्ट पार्टीसिपल' जैसी चीज़ों के बारे में जाने क्या-क्या बता रहे होते ! पढ़ाई हो चुकने के बाद वे दस मिनट हमें जीवन के संबंध में शिक्षा दिया करते थे। वे दस मिनट बिताना मुझे सबसे मुश्किल लगता था। वे पानी के छोटे-छोटे घूंट भरते और जोश में आकर सुन्दर और असुन्दर के विषय में जाने क्या कह रहे होते, और मैं अपनी कॉपी घुटनों पर रखे हुए उसमें लिखने लगता :

"सुन्दर मुन्दरियो, हो !
तेरा कौन बिचारा, हो !
दुल्ला भट्टीवाला, हो !"

बहन का ध्यान भी मेरी कापी पर होता क्योंकि वह आंख के इशारे से मुझे यह सब करने से मना करती। कभी वह इशारे से धमकी देती कि मास्टरजी से शिकायत कर देगी। मैं आंखों-ही-आंखों में उसकी ख़ुशामद कर लेता। जब मास्टरजी का सबक खत्म होता और उनकी कुर्सी 'च्यां' की आवाज़ करती हुई पीछे को हटती, तो मेरा दिल खुशी से उछलने लगता। सीढ़ियों पर खट्-खट् की आवाज़ समाप्त होने से पहले ही मैं पतंग और डोर लिये हुए कोठे पर पहुंच जाता और 'आ बोऽऽ काटाऽऽ काटाऽऽ ईऽऽ बोऽऽ !' का नारा लगा देता।

मास्टरजी के बारे में हम ज़्यादा नहीं जानते थे—यहां तक कि उनके नाम तक का भी नहीं पता था। एक दिन अचानक ही वे पिताजी के पास बैठक में आ पहुंचे थे। उन्होंने कहा था कि एक भी पैसा पास न होने से वे बहुत तंगी में हैं, मगर वे किसी से ख़ैरात नहीं लेना चाहते, काम करके रोटी खाना चाहते हैं। उन्होंने बताया कि उन्होंने कलकत्ता यूनिवर्सिटी से बी. एल. किया है और बच्चों को बंगला और अंग्रेज़ी पढ़ा सकते हैं। पिताजी हम दोनों की अंग्रेज़ी की योग्यता से पहले ही आतंकित थे, इसलिए उन्होंने उसी समय से उन्हें हमें पढ़ाने के लिए रख लिया। कुछ दिनों बाद वे उन्हें और ट्यूशन दिलाने लगे, तो मास्टरजी ने मना कर दिया। हमारे घर से थोड़ी दूर एक गंदी-सी गली में चार रुपये महीने की कोठी को लेकर रहने लगे थे। यह प्रश्न पूछने पर भी नहीं बताते थे कि बी. एल. करने के बाद उन्होंने प्रैक्टिस क्यों नहीं की और घर-बार छोड़कर गेरुआ क्यों धारण कर लिया। वे बस उत्तेजित-से पढ़ाने आते, और उसी तरह उत्तेजित-से उठकर चले जाते।

एक दिन घड़ी ने तीन बजाए तो हम लोग रोज़ की तरह भागकर बैठक में पहुंच गए और दम साधकर अपनी-अपनी कुर्सी पर बैठ गए। मगर काफ़ी समय गुज़र जाने पर भी सीढ़ियों पर खट्-खट् की आवाज़ सुनाई नहीं दी। एक मिनट, दो मिनट, दस मिनट ! हम लोगों को हैरानी

हुई—मुझे खुशी भी हुई। चार महीने में मास्टरजी ने पहली बार छुट्टी की थी। इस खुशी में मैं अंग्रेज़ी की कॉपी में थोड़ी ड्राइंग करने लगा। बहन से बी और एफ हमेशा एक-से लिखे जाते थे—वह उनके अन्तर को पकाने लगी। मगर यह खुशी ज़्यादा देर नहीं रही। सहसा सीढ़ियों पर खट्-खट् सुनाई देने लगी, जिससे हम चौंक गए और निराश भी हुए। मास्टरजी अपने रोज़ के कपड़ों के ऊपर एक छोटा गेरुआ कम्बल लिये बैठक में पहुंच गए। मैंने उन्हें देखते ही अपनी बनाई हुई ड्राइंग फाड़ दी। वे हांफते-से आकर आरामकुर्सी पर बैठ गए और दो घूंट पानी पीने के बाद पोइट्री की किताब खोलकर पढ़ाने लगे :

"टेल मी नॉट इन मोर्नफुल नंबर्ज़
लाइफ़ इज़ ऐन एम्टी ड्रीम... !"

मैंने देखा, उनका सारा चेहरा एक बार पसीने से भीग गया और वे सिर से पैर तक कांप गए। कुछ देर वे चुप रहे। फिर उन्होंने गिलास को छुआ, मगर उठाया नहीं। उनका सिर झुककर बांहों में आ गया और कुछ देर वहीं पड़ा रहा। उस समय ऐसा लगा, जैसे मेरे सामने सिर्फ़ कंबल में लिपटी हुई एक गांठ ही पड़ी हो। जब उन्होंने चेहरा उठाया, तो मुझे उनकी नाक और आंखों के बीच की झुर्रियां बहुत गहरी लगीं। उनकी आंखें झपतीं और कुछ देर बंद ही रहतीं। फिर जैसे प्रयत्न से खुलतीं। वह होंठों पर ज़बान फेरकर फिर पढ़ाने लगते :

"फ़ार द सोल इज़ डेड देट सल्बर्ज़
एण्ड थिंग्ज़ आर नॉट ह्वाट दे सीम !"

मगर उसके साथ उनका सिर फिर झुक जाता। मैंने डरी हुई-सी नज़र से बहन की तरफ देखा।

"मास्टरजी, आज आपकी तबीयत ठीक नहीं है," बहन ने कहा, "आज हम और नहीं पढ़ेंगे।"

नहीं पढ़ेंगे—यह सुनकर मेरे दिल में खुशी की लहर दौड़ गई। मगर उस हिलती हुई गठरी को देखकर डर भी लग रहा था। मास्टरजी ने आंखें उठाईं और धीरे-से कुछ कहा। फिर उन्होंने पुस्तक की तरफ हाथ बढ़ाया तो बहन ने पुस्तक खींच ली। कुछ देर मास्टरजी हम लोगों की तरफ देखते

रहे—जैसे हम उनसे बहुत दूर बैठे हों और वे हमें ठीक से पहचान न पा रहे हों। फिर एक लम्बी सांस लेकर चलने के लिए खड़े हुए।

पूरे चार सप्ताह वे टाइफाइड में पड़े रहे।

उन दिनों मेरी ड्यूटी लगाई गई कि मैं उनकी कोठरी में जाकर उन्हें सूप वगैरह दे आया करूं। वैद्यजी के पास जाकर उनकी दवाई-अवाई भी मुझे ही लानी होती थी। मेरा काफी समय उनकी कोठरी में बीतता। वे अपने कंबल में लिपटकर चारपाई पर लेटे हुए 'हाय-हाय' करते रहते और मैं ऊपर-नीचे होते हुए कंबल के रोयों को देखता रहता। कभी मिट्टी के फ़र्श पर या स्याह पड़ी हुई दीवारों पर उंगली से तस्वीरें बनाने लगता। कोठरी निहायत बोसीदा थी और उसमें चारों तरफ से पुराने सीलन की गंध आती थी। दीवारों का पलस्तर जगह-जगह से उखड़ गया था और कुछ जगह उखड़ने की तैयारी में ईंटों से आगे को उभर आया था। मुझे उस पलस्तर में तरह-तरह के चेहरे नज़र आते। पलस्तर का कोई टुकड़ा झड़कर खप-से नीचे आ गिरता तो मैं ऐसे चौंक जाता जैसे मेरी आंखों के सामने किसी मुर्दा चीज़ में जान आ गई हो। कभी मैं उठकर खिड़की के पास चला जाता। खिड़की में सलाखों की जगह बांस के टुकड़े लगे थे। गली में उठती हुई भयानक दुर्गन्ध से दिमाग़ फटने लगता। वह गली जैसे शहर का कूड़ाघर थी। एक मुर्गा गली के कूड़े को अपने पैरों से बिखेरता रहता और हर आठ-दस मिनट के बाद ज़ोर से बांग दे देता।

मास्टरजी के पास ज्यादा सामान नहीं था। पर जो कुछ भी था, उसे देखने को मेरे मन में बहुत उत्सुकता रहती थी। एक दिन जब थोड़ी देर के लिए मास्टरजी की आंख लगी तो मैंने कोठरी के सारे सामान की जांच कर डाली। कपड़ों के नाम पर वही चंद चीथड़े थे जो हम इनके शरीर पर देखा करते थे। डंडे और कमंडल के अतिरिक्त उनकी सम्पति में कुछ पुरानी फटी हुई पुस्तकें थीं जिनमें से केवल भगवद्गीता का शीर्षक ही मैं पढ़ सका। शेष पुस्तकें बंगला में थीं। एक पुस्तक के बीच में एक लिफ़ाफ़ा रखा था जिस पर सात साल पहले की हावड़ा और मिदनापुर की मोहरें लगी थीं। मैंने डरते-डरते लिफ़ाफ़े में से पत्र निकाल लिया। वह भी बंगला में था। बीच में कोई-कोई शब्द अंग्रेज़ी का था—स्टैंडर्ड...मीन्ज़

...ओवर-कान्फिडेंस...डिस्गस्टिंग...हेल...मैंने जल्दी से पत्र वापस लिफ़ाफ़े में रख दिया। पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ पुराने और नए फुलस्केप काग़ज़ थे जिस पर बंगला और अंग्रेज़ी में बहुत कुछ लिखा हुआ था। वे काग़ज़ अभी मेरे हाथों में ही थे कि मास्टरजी की आंख खुल गई और वे खांसते हुए उठकर बैठ गए। मैं कांपते हुए हाथों से काग़ज़ रखने लगा तो वे पहले मुस्कराए, फिर हंसने लगे।

"इन्हें इधर ले आओ।" वे बोले।

मैं अपराधी की तरह काग़ज़ लिये हुए उनके पास चला गया। उन्होंने काग़ज़ मुझसे ले लिये और मुझे पास बिठाकर मेरी पीठ पर हाथ फेरने लगे।

"जानते हो इन काग़ज़ों में क्या है ?" उन्होंने बुख़ार के कारण कमज़ोर आवाज़ में पूछा।

"नहीं।" मैंने सिर हिलाया।

"यह मेरी सारी ज़िन्दगी की पूंजी है।" उन्होंने कहा और उन काग़ज़ों को छाती पर रखे हुए लेट गए। लेटे-लेटे कुछ देर उन्हें उलट-पुलट कर देखते रहे, फिर उन्होंने उन्हें अपनी दाईं ओर रख लिया। कुछ देर वे अपने में खोए रहे और जाने क्या सोचते रहे। फिर बोले, "बच्चे जानते हो, मनुष्य जीवित क्यों रहना चाहता है ?"

मैंने सिर हिला दिया कि मैं नहीं जानता।

"अच्छा, मैं तुम्हें बताऊंगा कि मनुष्य क्यों जीवित रहना चाहता है और कैसे जीवित रहता है। मैं तुम्हें और भी बहुत कुछ बताना चाहता हूं, मगर अभी तुम छोटे हो। ज़रा बड़े होते, तो...। ख़ैर...अब भी जो कुछ बता सकता हूं, ज़रूर बताऊंगा। तुम मेरे लिए बच्चे की तरह हो—तुम दोनों ही मेरे बच्चे हो।"

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया। मेरा दिल बैठने लगा कि वे जो कुछ बताना चाहते हैं, उसी समय न बताने लगें क्योंकि मैं जानता था कि वे जो कुछ भी बताएंगे वह ऐसी मुश्किल बात होगी कि मेरी समझ में नहीं आएगी। समझने की कोशिश करूंगा, तो कई मुश्किल शब्दों के अर्थ सीखने पड़ेंगे। मेरा अनुभव कहता था कि शब्द खुद जितना मुश्किल होता है, उसके

हिज्जे उससे भी ज़्यादा मुश्किल होते हैं। हिज्जों से मैं बहुत घबराता था।

मगर उस समय उन्होंने और कुछ नहीं कहा। सिर्फ़ मेरा हाथ पकड़ कर लेटे रहे।

अच्छे होकर जब वे हमें फिर पढ़ाने आने लगे, तो उन्होंने कहा कि अब से वे अंग्रेज़ी के अतिरिक्त थोड़ी-थोड़ी बंगला भी सिखायेंगे क्योंकि बंगला सीखकर हम उनके विचारों को ठीक से समझ सकेंगे। अब वे तीन बजे आते और साढ़े पांच-छह बजे तक बैठे रहते। मैं साढ़े-तीन, चार बजे से ही घड़ी की तरफ देखना आरम्भ कर देता और जाने किस मुश्किल से वह सारा वक़्त काटता। उनकी दो महीने की जी-तोड़ मेहनत से हम बहन-भाई इतनी ही बंगला सीख पाए कि एक-दूसरे को बजाय तुम के 'तूमि' कहने लगे। वह कहती, "तूमि मेरी कापी का बरका न फाड़ो !"

और मैं कहता, "तूमि बकवास मत करो।"

हमारी इस प्रगति से मास्टरजी बहुत निराश हुए और कुछ दिनों बाद उन्होंने हमें बंगला सिखाने का विचार छोड़ दिया। अनुवाद के लिए अब वे पहले से भी मुश्किल पैसेज लिखाने लगे, मगर इससे सारा अनुवाद उन्हें खुद ही करना पड़ता। उस माध्यम से भी हमें बड़ी-बड़ी बातें सिखाने का प्रयत्न करके जब वे हार गए, तो उन्होंने एक और उपाय सोचा। वे फुलस्केप काग़ज़ बीच में से आधे-आधे फाड़कर उन पर दोनों ओर पेंसिल से अंग्रेज़ी में बहुत कुछ लिखकर लाने लगे। बहन के लिए वे अलग काग़ज़ लाते और मेरे लिए अलग। उनका कहना था कि वे रोज़ उन काग़ज़ों में हमको एक-एक नया विचार देते हैं, जिसे हम अभी चाहे न समझें, बड़े होने पर ज़रूर समझ सकेंगे, इसलिए हम उन काग़ज़ों को अपने पास संभालकर रखते जाएं। पहले छः-आठ दिन तो हमने काग़ज़ों की बहुत संभाल रखी, मगर बाद में इन्हें संभालकर रखना मुश्किल होने लगा। अक्सर बहन मेरे काग़ज़ कहीं से गिरे हुए उठा लाती और कहती कि कल वह मास्टरजी से शिकायत करेगी। मैं मुंह बिचका देता। एक दिन मैंने देखा, अलमारी में सिर्फ़ बहन के काग़ज़ ही तह किए रखे हैं, मेरा कोई काग़ज़ नहीं है। चारों तरफ खोज करने पर भी मुझे अपने काग़ज़ नहीं मिले, तो मैंने बहन के सब पुलिंदे भी उठाकर फाड़ दिए। इस पर बहन ने मेरे बाल नोच लिये।

मैंने उसके बाल नोच लिये। उस दिन से हम दोनों इस ताक में रहने लगे कि कब मास्टरजी के दिए हुए एक के काग़ज़ दूसरे के हाथ में लगे कि वह उन्हें फाड़ दे। मास्टरजी से काग़ज़ लेते हुए हम चोर-आंख से एक-दूसरे की तरफ देखते और मुश्किल से अपनी मुस्कराहट दबाते। मास्टरजी किसी-किसी दिन अपने पुराने काग़ज़ के पुलिंदे साथ ले आते थे और वहीं बैठकर उनमें से हमारे लिए कुछ हिस्से नकल करने लगते थे। हम दोनों उतनी देर कापियों पर इधर-उधर रिमार्क लिखकर आपस में कॉपियां तब्दील करते रहते। इधर मास्टरजी वे पुलिंदे हमारे हाथों में देकर सीढ़ियों से उतरते, उधर हमारी आपस में छीना-झपटी आरम्भ हो जाती और हम एक-दूसरे के काग़ज़ को मसलने और नोचने लगते। अक्सर इस बात पर हमारी लड़ाई हो जाती कि मास्टरजी एक को अठारह और दूसरे को चौदह पन्ने क्यों दे गए हैं।

परीक्षा में अब थोड़े ही दिन रह गए थे। पिताजी ने एक दिन हमसे कहा कि हम मास्टरजी को अभी से सूचित कर दें कि जिस दिन हमारा अंग्रेज़ी का बी पेपर होगा उस दिन तक तो हम उनसे पढ़ते रहेंगे मगर उसके बाद...। उस दिन मास्टरजी के आने तक हम आपस में झगड़ते रहे कि हममें से कौन उनसे यह बात कहेगा। आख़िर तीन बज गए और मास्टरजी आ गए। उन्होंने हमेशा की तरह घड़ी की तरफ देखा, 'त्चत् च्चत्' की आवाज़ के साथ सिर को झटका दिया और पानी का एक घूंट पीकर पोइट्री की किताब खोल ली। हम दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा और आंखें झुका लीं।

''मास्टरजी !'' बहन ने धीरे-से कहा।

उन्होंने आंखें उठाकर उसकी तरफ देखा और पूछा कि क्या बात है—उसकी तबीयत तो ठीक है ?

बहन ने एक बार फिर मेरी तरफ देखा, मगर मेरी आंखें ज़मीन में धंसी रहीं।

''मास्टरजी, पिताजी ने कहा है...'' और उसने रुकते-रुकते बात उन्हें बता दी।

''क्या मैं नहीं जानता ?'' माथे पर त्यौरियां डालकर सहसा उन्होंने

कड़े शब्दों में कहा, "मुझे यह बताने की क्या ज़रूरत थी ?" और वे जल्दी-जल्दी कविता की पंक्तियाँ पढ़ने लगे :

"शेड्स ऑफ़ नाइट वर फ़ालिंग फास्ट।
ह्वेन थ्रू ऐन एल्पाइन विलेज पास्ट।
ए यूथ..."

सहसा उनका गला भर्रा गया। उन्होंने जल्दी-से दो घूंट पानी पिया और फिर पढ़ने लगे :

"शेड्स ऑफ नाइट वर फ़ालिंग फ़ास्ट !..."

उस दिन पहली बार उन्होंने जाने का समय जानने के लिए भी घड़ी की तरफ देखा। पूरे चार बजते ही वे कागज़ समेटते हुए उठ खड़े हुए। अगले दिन आए तो आते ही उन्होंने हमारी परीक्षा की डेटशीट देखी और बताया कि जिस दिन हमारा बी पेपर होगा उसी दिन वह वहां से चले जाएंगे। उन्होंने निश्चय किया था कि वे कुछ दिन जाकर गरुड़चट्टी में रहेंगे, फिर उससे आगे घने पहाड़ों में चले जाएंगे, जहां से फिर कभी लौटकर नहीं आएंगे। उस दिन उनसे पढ़ते हुए न जाने क्यों मुझे उनके चेहरे से डर लगता रहा।

हमारा बी पेपर हो गया। मास्टरजी ने कांपते हाथों से हमारा पर्चा देखा। उन्होंने जो-जो पूछा, मैंने उसका सही जवाब बता दिया। मैं हाल से निकलकर हर सवाल के सही जवाब का पता कर आया था। बहन जवाब देने में अटकती रही। मास्टरजी ने मेरी पीठ थपथपाई, पानी पिया और चले गए। मगर शाम को वे फिर आए। पिताजी से उन्होंने कहा कि वे जाने से पहले एक बार बच्चों से मिलने आए हैं। हम लोगों को अन्दर से बुलाया गया। मास्टरजी ने हमसे कोई बात नहीं की, सिर्फ़ हमारे सिर पर हाथ फेरा और 'अच्छा...' कहकर चल दिए। हम लोग उनके साथ-साथ ड्योढ़ी तक आए। वहां रुककर उन्होंने मेरी ठोड़ी को छुआ और कहा, "अच्छा, मेरे बच्चे !—" और कांपते हाथ से उन्होंने किसी तरह अपना भूरा-सा फाउंटेनपेन जेब से निकाला और मेरे हाथ में दे दिया।

"रख लो, रख लो !" उन्होंने ऐसे कहा जैसे मैंने उसे लेने से इनकार किया हो, "बहुत अच्छा तो नहीं है, मगर काम करता है। मुझे तो

अब इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी। तुम अपने पास रख छोड़ना...या फेंक देना ...।"

उनकी आंखें भर आई थीं इसीलिए उन्होंने मुस्कराने का प्रयत्न किया और मेरा कंधा थपथपाकर खट्-खट् सीढ़ियां उतर गए। बहन स्पर्धा की दृष्टि से मेरे हाथ में उस फाउंटेन पेन को देख रही थी। मैंने उसे अंगूठा दिखाया और पेन खोलकर उसके निब की जांच करने लगा।

मगर उसके कुछ ही दिन बाद वह निब मुझसे टूट गई—और फिर वह पेन भी जाने कहां खो गया।

मन्नू भण्डारी

मन्नू भण्डारी (सन् 1931)–नई पीढ़ी की श्रेष्ठ कथा-लेखिकाओं में मन्नू भण्डारी का अपना विशिष्ट स्थान है। इनकी कहानियों में आधुनिक नारी के मानसिक द्वन्द्व, पारिवारिक सम्बन्ध और सामाजिक दायित्वों का बड़ी गहराई और मार्मिकता से चित्रण हुआ है। नारी-मनोविज्ञान को स्वानुभूति के रूप में ढालकर हार्दिक संवेदनशीलता एवं सहजता के साथ मन्नू जी ने अपनी कहानियों में कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है कि वे बड़ी प्रभावशाली लगती हैं। इनकी कहानियों में शिल्प की सफाई और सादगी तो है ही, साथ ही अभिव्यक्ति का अपना एक निजी ढंग है। इनकी कहानियों में प्रत्येक पात्र के साथ सहानुभूति परिलक्षित होती है, जो नारी-सुलभ विशेषता है।

मन्नू भण्डारी का जन्म भानपुरा (राजस्थान) में सन् 1931 में हुआ। आप हिन्दी के प्रसिद्ध कोशकार श्री सुखसम्पतराय भण्डारी की पुत्री हैं। आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रसिद्ध हिन्दी कथाकार राजेन्द्र यादव से आपका विवाह हुआ। काफी समय तक कलकत्ता में अध्यापन कार्य करती रहीं। फिर दिल्ली के एक महिला कॉलेज में हिन्दी प्रवक्ता रहीं।

'मैं हार गयी', 'तीन निगाहों की तस्वीर', 'अकेली', 'एक पुरुष : एक नारी', 'बिना दीवारों के घर', 'एक प्लेट सैलाब', 'यही सच है' आदि आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

नई नौकरी

टाई की नॉट ठीक करते हुए कुन्दन आदेश देता जा रहा था, "सोफ़े क़ा कपड़ा कम पड़ गया है, तुम खुद लाकर दे देना। इनके ज़िम्मे कर दिया तो समझो सब चौपट। दरवाज़े, खिड़कियों का वार्निश आज ज़रूर पूरा हो जाना चाहिए। और देखो, प्लम्बर आएगा तो जहां-जहां के नल और पाइप ख़राब हों, सब ठीक करवा लेना।"

रमा पीछे खड़ी सामने के आईने में पड़ते कुन्दन के प्रतिबिम्ब को देख रही थी। उसे लग रहा था नई नौकरी के साथ कुन्दन की सारी पर्सनेलिटी ही नहीं, बात करने का लहजा तक बदल गया है। कितना आत्मविश्वास आ गया है सारे व्यक्तित्व में ? रोब जैसे टपका पड़ता है।

होंठों के कोनों में चुरुट दबाए, जाने से पहले इसने सारे घर का चक्कर लगाया। यह भी रोज़ का एक क्रम हो गया था। पीछे के बरामदे में दर्ज़ी सोफ़े के कवर्स की सिलाई कर रहा था। कुछ दूर खड़ा मिस्त्री छोटे-छोटे टिनों में वार्निश तैयार करते लड़के को कुछ आदेश दे रहा था। कुन्दन को देखकर उसने सलाम ठोंका। "अब्दुल मियां, काम आज पूरा हो जाना चाहिए, तुम्हारा काम बहुत स्लो चल रहा है।"

"काम भी तो देखिए सरकार ! समय चाहे दो दिन का ज़्यादा लग जाए, पर आपको शिकायत का मौका नहीं दूंगा। मैं साहब, काम की क्वालिटी पर..."

"अच्छा...अच्छा..." कुन्दन लौट आया। ड्राइंग-रूम के पार्टीशन पर नज़र पड़ते ही कहा, "इंटीरियर डेकोरेटर्स' वालों के यहां फ़ोन ज़रूर कर देना। यह पार्टीशन बिलकुल नहीं चलेगा। डिज़ाइन क्या बताया था, बनवा क्या दिया, रबिश।"

कुन्दन गाड़ी में बैठा। रमा पोर्टिको की सबसे निचली सीढ़ी पर खड़ी थी। उसे लगा, जाने से पहले एक बार वह फिर सारे आदेशों को दोहराएगा, पर नहीं। गाड़ी स्टार्ट करके, खिड़की से ज़रा-सा हाथ निकालकर हलके-से हिलाते हुए कहा, "अच्छा, बा...बाई," तो इसे ख़याल आया, यह तो उसकी आदत थी कि गाड़ी में बैठकर चलने से पहले वह नौकर के सामने बताए

हुए सारे काम फिर से दोहरा दिया करती थी।

तब कुन्दन हंसता हुआ कहता था, "बस भी करो यार, अब कितनी बार दोहराओगी। तुम इतनी बार कहती हो, इसी से वह गड़बड़ा जाता है।"

गाड़ी लाल बजरी की सड़क पर तैरती हुई फाटक से बाहर निकली और दूर होती हुई अदृश्य हो गई।

रमा को लगा जैसे कुन्दन उसे पीछे छोड़कर आगे निकल गया है ...बहुत आगे। जैसे वह अकेली रह गई है। एक महीने पहले वह भी कुन्दन के साथ ही निकला करती थी। कुन्दन उसे कॉलेज छोड़ता हुआ ऑफ़िस जाया करता था। पर अकेलेपन की यह अनुभूति तभी तक रहती जब तक वह पोर्टिको में खड़ी रहती। जैसे ही फ़्लैट का दरवाज़ा खोलकर वह भीतर घुसती—लक-दक फ़र्नीचर, शीशों के दरवाज़े और खिड़कियों पर झूलते लम्बे-लम्बे पर्दे, मिस्त्रियों की खटपट, नए-नए डिस्टेम्पर और वार्निश की हलकी-सी गन्ध के बीच न जाने कहां डूब जाती।

काम की एक लिस्ट उसके पास होती, जिन्हें उसे पूरा करना होता; काम करते मिस्त्रियों को देखना होता; मार्केट के दो-एक चक्कर भी लगाने होते...और यह सब करते-करते ही शाम हो जाती ! ट्रिंग-ट्रिंग...ट्रिंग-ट्रिंग...

फ़ोन उठाकर उसने नंबर बोला, "कौन, मिसेज़ बर्मन ! कहिए, कहिए, क्या ख़बर है ?"

मिसेज़ बर्मन शिकायत कर रही थीं, "कॉलेज छोड़े महीना होने को आया, एक बार सूरत तक नहीं दिखाई। आउट ऑफ़ साइट..."

"अरे नहीं-नहीं," रमा ने बात बीच में ही काट दी। उसने थोड़ा-सा झुककर कोहनी मेज़ पर टिका ली। उलटे हाथ में पेंसिल लेकर वह फ़ोन का संदेशा लेने के लिए जो पैड रखा था, उस पर यों ही आड़ी-तिरछी लकीरें खींचने लगी।

"आज लंच के समय आओ न, साथ बैठकर खाएंगे। तुम्हारे चले जाने से हमारा डिपार्टमेंट तो सूना ही हो गया। लंच के समय तो तुम्हें बहुत ही मिस करते हैं। और एक तुम हो कि जाने के बाद ख़बर तक नहीं ली..."

"क्या बताऊं, इस नए घर को ठीक कराने के चक्कर में इतनी व्यस्त

रही कि उधर आ नहीं सकी। अच्छा यह बताइए, सुधा, मालती, जयन्ती, सब कैसी हैं ?''

''कहा न, आज आओ, सबसे मिल भी लेना, खाना भी साथ खाएंगे।''

''आज ?'' और एक क्षण को मन के भीतरी स्तर पर आज के सारे कामों की लिस्ट तैर-सी गई, ''आज तो संभव नहीं होगा मिसेज़ बर्मन !'' क्षमायाचना के-से स्वर में बोली, ''बस एक सप्ताह और ठहर जाइए, फिर अपने इस नये घर की पार्टी दूंगी...देखिए अपनी रमा का कमाल...देखेंगी तो पता लगेगा कि एक महीने तक क्या करती रही।'' फिर और दो-चार इधर-उधर की बातें और हलकी-फुलकी-सी मज़ाकें हुईं और रमा ने फ़ोन रख दिया।

फ़ोन रखने के बाद नये सिरे से इस बात का बोध हुआ कि कॉलेज छोड़े उसे अट्ठाईस दिन हो गए। जाना तो दूर, उसे कभी ख़याल भी नहीं आया वहां का। आश्चर्य के साथ-साथ उसे थोड़ी-सी ग्लानि भी हुई; वह क्यों नहीं गई, कैसे रह सकी बिना गए ? आज बर्मन का फ़ोन नहीं आता तो पता नहीं और भी कितने दिनों तक उसे उधर का ख़याल ही नहीं आता। क्या सचमुच वह बड़े अफ़सर की बीवी बन गई है ? उसे मज़ाक में कसा हुआ जयन्ती का रिमार्क याद आया।

एकाएक मन हुआ कि अभी चल पड़े। एक बार सबसे मिल ही आए। मना करने के बाद पहुंचकर वह सबको प्लेजेंट सरप्राइज़ देगी। उसने रसोई में जाकर दस-बारह आलू के पराठे और चाट तैयार करने को कहा। ये दोनों चीज़ें वहां सबको बहुत पसन्द थीं। सारे डिपार्टमेंट में वह और मिसेज़ बर्मन ही विवाहित थीं...बाकी सब कॉलेज-होस्टल में रहती थीं और अच्छी-अच्छी चीज़ें खाने की उनकी फरमाइशें बनी ही रहती थीं।

उसे अपनी फ़ेयरवेल पार्टी की याद आई। साढ़े दस साल की सर्विस थी। प्रिंसिपल के अनेकानेक शुभकामनाओं के साथ फूलों के बड़े-बड़े गुलदस्तों के बीच पार्कर का एक सेट रखकर दिया था, ''मिसेज़ चोपड़ा, आप इसी पेन से अपना थीसिस पूरा करिए। जब भी वापस काम करने का मन हो, बिना किसी संकोच के चली आइए, यहां आपका हमेशा ही स्वागत है।''

उनके डिपार्टमेंट की सभी लेक्चरर्स गाड़ी तक छोड़ने आई थीं, "भई रमा जी, कॉलेज भले ही छोड़ दीजिए, पर लंच के समय खाना लेकर ज़रूर आ जाया करिए," तो उसकी नम आंखों में भी हंसी चमक उठी थी। तब उसे कुन्दन की बात याद हो आई थी, "तुम वहां पढ़ाने जाती हो या खाने ! फ़ोन पर भी जब तुम लोगों की बातें होती हैं तो खाना ही डिस्कस होता है।" उसने केवल इन लोगों से ही नहीं कहा था, बल्कि मन में भी सोचा था कि लंच के समय वह कॉलेज चली ही जाया करेगी। आख़िर उसे भी तो अपने को कॉलेज से एकदम काट लेने में काफी कष्ट होगा...इस तरह धीरे-धीरे तो फिर भी...

तो क्या कुन्दन ने ठीक ही कहा था ? कॉलेज छोड़ने का निर्णय लेकर वह चुपचाप रो रही थी और कुन्दन उसे समझा रहा था—"मैं कह रहा हूं, तुम्हें क़तई अकेलापन नहीं लगेगा, तुम ज़रा भी कमी महसूस नहीं करोगी; रादर यू विल फ़ील रिलीव्ड। कितना स्ट्रेन है तुम पर आजकल !"

कुन्दन को एकाएक विदेशी कम्पनी में इतनी बड़ी नौकरी मिल जाएगी, इसकी आशा औरों को चाहे रही भी हो, कुन्दन को बिलकुल नहीं थी। डॉ. फ़िशर से पिछले आठ साल से उसके सम्बन्ध थे, विशुद्ध व्यावसायिक सम्बन्ध। उनकी प्रशंसा और सद्व्यवहार को भी वह व्यावसायिक औपचारिकता से अधिक कुछ नहीं मानता था, पर...

दस-बारह दिन तक केवल जश्न ही मनाया था रमा और कुन्दन ने। पैसे की उसे इतनी लालसा नहीं थी, पर मारवाड़ी कन्सर्न का काम उसके टेम्परामेंट के बिलकुल अनुकूल नहीं था। रमा इस नये माहौल से नितांत अपरिचित नहीं थी—क्लब, डांस, डिनर, कॉक्टेल यह सब वह बचपन से देखती आई थी, पर बस देखती ही आई थी, उसमें अपने को कभी घुला नहीं पाई थी।

डॉ. फ़िशर ने कुन्दन को केवल नौकरी ही नहीं दी थी, धीरे-धीरे वे उसकी सारी ज़िन्दगी का पैटर्न भी तय कर रहे थे। उसे दो-तीन क्लबों का मेम्बर बनना पड़ा। आए-दिन दूसरी कम्पनियों के बड़े-बड़े अफ़सरों को एंटरटेन करना पड़ता। विदेशियों को हिन्दुस्तानी खाना खिलाने के बहाने उसे

घर में भी बड़ी-बड़ी पार्टियां करनी पड़तीं। और तीन महीने पहले उसे कम्पनी की ओर से यह फ्लैट मिल गया। उसने सोचा, वह अपने इस नये घर को निहायत ही ओरिएंटल ढंग से सजाएगा, विदेशियों के लिए तो यही नवीनता होगी।

पर घर के लिए नया फ़र्नीचर बनवाने, चुन-चुनकर चीज़ें ख़रीदने के लिए दोनों में किसी के पास भी समय नहीं था। कुन्दन चाहता था यह काम रमा को करना चाहिए; उसकी रुचि बहुत अच्छी थी, यों भी यह काम उसी का था। पर रमा के पास समय नहीं रहता। सवेरे उठकर वह बंटी को तैयार करके स्कूल भेजती। फिर ख़ुद तैयार होती। तैयार होते-होते ही वह नौकर को आदेश देती जाती, सारे दिन का काम समझाती; नाश्ता करते-करते वह अपना लेक्चर तैयार करती, तैयार तो क्या करती बस सूंघ-भर लेती। फिर नौ बजे कुन्दन के साथ ही निकल जाती। तीन के क़रीब वह लौटती। थोड़ा आराम करती और फिर शाम की तैयारी। बाहर नहीं जाना होता था तो घर में किसी को आना रहता था।

रात ग्यारह-साढ़े ग्यारह पर वह सोती तो थककर चूर हो जाती। कुन्दन को उस समय हलकी-सी ख़ुमारी चढ़ी रहती, कहता, "डोंट बी सिली। पार्टी में कैसे थक जाती हो ? गाड़ी में बैठकर जाती हो...खाना-पीना, हंसी-मज़ाक, इनसे भी कहीं थका जाता है ? गाड़ी में बिठाकर ले आता हूं।"

रमा तब केवल सूनी-सूनी आंखों से देखती रहती। मन की भीतरी परतों पर हिस्ट्री के वे टॉपिक्स तैरते जो उसे कल पढ़ाने होते, और जिन्हें वह जबरन ही दिमाग़ से बाहर ठेलने का प्रयास करती। कुन्दन उसे बताता रहता कि डॉ. फ़िशर उससे कितने खुश हैं, कितना इम्प्रेस कर रखा है उसने; एकाएक ही उसे अपना भविष्य बहुत उज्ज्वल दिखाई देने लगा है। पता नहीं, थकान के कारण या किसी और वजह से वह उतना उत्साह नहीं दिखा पाती तो कुन्दन बिगड़ पड़ता, "क्या बात है, देखता हूं तुम्हें कोई दिलचस्पी नहीं है मेरे राइज़ में...यू सीम टु बी..."

"क्या बेकार की बातें करते हो, मुझे नींद आ रही है।"

कभी कुन्दन फ़ोन पर कह देता है कि ठीक सात बजे तैयार होकर रहना और आकर देखता कि वह तैयार हो रही है तो बिगड़ पड़ता, "रमा, तुम्हें

टाइम की सेंस कब आएगी...'' कभी घर पर खाना होता और कोई कसर रह जाती तो रात में बड़े संभलकर कहता, ''मैं यह नहीं कहता तुम खाना बनाओ...तीन-तीन नौकर तुम्हारे पास हैं, पर ज़रा-सा देख-भर लिया करो !'' ऐसे मौक़ों पर रमा कुछ नहीं कहती।

उस दिन कॉलेज में रमा को एक पेपर पढ़ना था। उसने खुद ही ऑफ़र किया था। सोचा था, इसी बहाने एक टॉपिक तैयार हो जाएगा, पर बिलकुल भी तैयार नहीं कर पाई। रात में लेटी तो रोना आ गया।

''मुझसे यह सब निभता नहीं।'' लौटकर बिना कपड़े बदले ही कटे पेड़ की तरह पलंग पर गिरकर उसने कहा।

''क्या नहीं निभता ?''

''यह रवैया मेरे बस का नहीं है। कितना गिल्टी फ़ील करती हूं। बिना तैयार किए पढ़ाना, लगता है जैसे लड़कियों को चीट कर रही हूं। दो घंटे का समय भी तो मुझे अपने लिए नहीं मिलता।''

कुन्दन सोच रहा था कि रात में रमा के साथ वह एक-एक कमरे को अरेंज करने की योजना बनाएगा। कलर-स्कीम के लिए उसने जेन्सन-निकल्सन वालों से बात की थी। रमा की बात सुनी तो चुप रह गया।

''बंटी की रिपोर्ट देखी ? हमेशा फ़र्स्ट आया करता था, इस बार सेविन्थ आया है।''

बगल में लेटकर, रमा को अपनी ओर खींचते हुए कुन्दन ने बहुत प्यार-भरे लहजे में कहा, ''तो तुम उसे पढ़ाया करो !''

''कब पढ़ाया करूं, तुम्हीं बताओ ! शाम को पांच से सात बजे का जो समय मिलता है, उसमें वह खेलने जाता है।''

''तो तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं ?'' बालों में हाथ फेरते हुए कुन्दन ने बहुत ही मुलायम स्वर में पूछा।

''कल मुझे पेपर पढ़ना है। पन्द्रह दिन पहले टॉपिक मिला था। एक लाइन भी नहीं लिखी है...अब कोई झूठा बहाना ही तो बनाना पड़ेगा।''

कुन्दन की उंगलियां बालों पर से उतरकर गालों पर फिसलने लगीं।

''दस साल पूरे हुए...छः-आठ महीने में अपनी थीसिस सबमिट कर देती तो मेरा सिलेक्शन-ग्रेड में आना निश्चित ही था, पर ऐसी हालत रही

तो..."

रमा रो पड़ी।

दूर कहीं कुन्दन के कानों में डॉ. फ़िशर के शब्द गूंज रहे थे, "जनवरी में जर्मनी से डाइरेक्टर आने वाले हैं, हमें यहां का सारा काम दिखाना होगा। एक नया प्लांट बिठाने की भी योजना है, उसके लिए कुछ रिसपॉन्सिबल लोगों की ज़रूरत होगी...सम स्मार्ट यंग मेन ! बिज़नेस में सोशल कॉण्टेक्ट्स पे करते हैं। यू विल हैव टु बी वैरी सोशल !"

कुन्दन को इन बातों में हमेशा अपने लिए कुछ संकेत, कुछ आश्वासन मिलते।

"लकीली योर वाइफ़..."

"तुम मुझे छोड़ जाया करो। कोई ज़रूरी है कि मैं हर दिन तुम्हारे साथ जाया करूं ?"

कुन्दन कुछ देर उसे यों ही सहलाता रहा, फिर एकाएक उसे बांहों में भरता-सा बोला, "तुम्हें छोड़कर आज तक मैं कहीं गया हूं, जा सकता हूं ! ऑफिस के अलावा हमेशा हम साथ जाते हैं। तुम तो जानती हो कि तुम्हारे बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

रमा ख़ुद इस बात को जानती है। उसका आठ साल का विवाहित जीवन दोस्तों के बीच ईर्ष्या और प्रशंसा का विषय रहा है। समझ नहीं पाती, क्या कहे ! वह जब तक सो नहीं गई, कुन्दन उसे प्यार से थपथपाता रहा था।

"मेम साहब, परांठे अभी बनेंगे ?"

..."ऐं ?" चौंकते हुए रमा ने पूछा। फिर बोली, "नहीं-नहीं, साढ़े बारह बजे बनाना है, एक बजे हम कॉलेज जाएंगे आज। इतने एक चक्कर बाज़ार का लगा आऊं, सोफ़े का कपड़ा लाकर दे दूं।" उसने एक बार भीतर जाकर मिस्त्रियों को याद दिला दिया कि आज पॉलिश हर हालत में ख़त्म कर देनी है।

फिर अपनी डायरी देखी—बाज़ार से और क्या-क्या सामान लाना है। कपड़े बदलने अंदर गई तो देखा नौकर ने रैक से सारी किताबें निकाल रखी थीं और पोंछकर जमा रहा था।

इनमें से एक किताब भी उसने नहीं पढ़ी है, कुछ पर तो अभी तक अपना

नाम भी नहीं लिखा है। कुन्दन ने भी जोश में आकर एक दिन में इतनी ढेर-सी किताबें ख़रीदकर सामने रख दी थीं।

बात शुरू दूसरे स्तर पर हुई थी। कुन्दन ऑफ़िस से लौटा था तो बिना किसी प्रसंग के रमा ने कहा, "मैं कॉलेज छोड़ दूंगी। इस तरह काम करने से तो नहीं करना ज़्यादा अच्छा है।" स्वर में न कहीं तल्ख़ी थी, न शिकायत, बड़े सहज स्वर में उसने कहा था।

कुन्दन देखता रहा। यही वाक्य था जिसे उसने अनेक बार अनेक तरह से मन-ही-मन दोहराया था, पर कहने का मौक़ा नहीं मिला था। अब तो उसे यह और भी ज़रूरी लग रहा था, क्योंकि जनवरी तक उसे अपना सारा घर डेकोरेट करना था...ओरिएंटल स्टाइल पर। फिर भी उसने पूछा, "क्या बात हो गई ?"

"कुछ नहीं।"

कुन्दन को इस समय और बात खींचना अच्छा नहीं लगा। चाय का प्याला हाथ में लिये ही लॉन में निकल गया। कैक्टस की जितनी वैराइटी ला सकता था, लाकर फाटक के दोनों ओर बड़ी खूबसूरत रॉकरीज़ बनाई थीं। पर लॉन से वह अभी-भी सन्तुष्ट नहीं था। चाहता था, लॉन पर्शियन कार्पेट में बदल जाए।

रात में फिर प्रसंग चला। कुन्दन उससे बचना भी चाहता था और जानना भी चाहता था कि रमा ने सचमुच ही निर्णय ले लिया है या कि केवल कुन्दन पर अपना आक्रोश प्रकट कर रही है। पर रमा ने केवल इतना ही कहा, "अब निभता नहीं, कल इस्तीफ़ा दे दूंगी।"

स्वर के भीगेपन ने कुन्दन को भी कहीं से छुआ ज़रूर, फिर भी सारी बात को एक हलके मज़ाक में बदलने के लहजे से उसने कहा, "छोड़ो भी यार, वैसे भी क्या रखा है एंशियंट हिस्ट्री पढ़ाने में। चोल वंश, चेदि वंश के बारे में न भी जानेंगे तो कौन सी ज़िन्दगी हराम हो जाएगी !"

रमा चुप।

"इससे तो तुम खूब किताबें पढ़ो, मैगज़ीन्स पढ़ो...कुछ छुटपुट क्लासेज़ अटेंड कर लो। बंटी को पढ़ाओ। दुनिया-भर के बच्चे को पढ़ाओ और अपना बच्चा निगलेक्ट हो..."

रमा चुप।

कुन्दन इस चुप्पी पर खीझ आया, फिर भी अपने स्वर को भरसक संयत बनाकर बोला, "तुम्हें शायद लग रहा है कि मेरी वजह से, इस नई नौकरी की वजह से तुम्हें अपना काम छोड़ना पड़ रहा है...पर यह तो सोचो, मुझे ही इस नौकरी में क्या दिलचस्पी है; तुम्हारे लिए, बंटी के लिए..."

"मैंने तो ऐसा नहीं कहा। मैं तो यही सोच रही थी, आख़िर मेरे मन के सन्तोष के लिए क्या होगा ?"

"मेरा सन्तोष तुम्हारा सन्तोष नहीं है; मेरी तरक्क़ी तुम्हारी तरक्क़ी नहीं है ?"

"है क्यों नहीं ? मेरा यह मतलब नहीं था। दस साल से काम कर रही थी छोड़ दूंगी तो मेरा मन कैसे लगेगा ?"

"मैं तो सोचता हूं, तुम्हें यह सब सोचने का समय ही नहीं मिलेगा।" और शाम को उसने तीन बंडल किताबें लाकर उसके सामने रख दी थीं।

और सचमुच उसके बाद उसे वह सब सोचने का समय ही कब मिला। आज भी मिसेज़ बर्मन के टेलीफ़ोन ने ही उसे कॉलेज की याद दिलाई, वरना...

सारे दिन गाड़ी में घूम-घूमकर उसने घर का सामान ख़रीदा है। पर्दों के लिए उसने लूम वालों से यह तय किया कि चालीस गज़ कपड़ा बनाकर वह उस डिज़ाइन को नष्ट कर देंगे, जिससे वैसे पर्दे और कहीं देखने को भी न मिलें। डिज़ाइन भी उसने ख़ुद पसन्द करके बनवाया था।

राजस्थान की किसी रियासत का बहुत-सा सामान नीलाम हुआ था। कितने दिनों तक वह वहां जा-जाकर बैठी थी—पुरानी पेंटिंग्ज़, झाड़फानूस और भी सजावट की छोटी-मोटी चीज़ें उनसे ख़रीदी थीं।

आज दरवाजों का पॉलिश समाप्त हो जाएगा तो सारा सामान जमाना है। डायरेक्टर बम्बई आ गए हैं, अगले सप्ताह तक यहां आएंगे, तब तक वह सब जमा लेगी। 'इंटीरियर डेकोरेटर्स' के यहां से एक आदमी बराबर आता रहा है। उसे फोन करने का ख़याल आया।

लाइन एंगेज्ड थी।

वह बाहर जाने के लिए निकल ही रही थी कि टेलीफ़ोन की घंटी बजी।

रमा ने रिसीवर उठाकर अपना नम्बर बोला।

"ओह, मैं तो सोच रहा था, तुम कहीं मार्केट के लिए नहीं निकल गई होगी।"

"बस, निकल ही रही थी।"

"सुनो डार्लिंग, लंच पर मेरे साथ एक साहब होंगे, यहीं के हैं, बहुत फ़ार्मल होने की ज़रूरत नहीं है, बस ज़रा-सा देख लेना। डेकोरेटर को फ़ोन किया ?"

"किया था, पर लाइन नहीं मिली, लौटकर फिर करूंगी।"

"ओ-के।" खट !

रसोई में जाकर रमा ने कहा, "थोड़ी सब्ज़ियां उबालकर इन उबले हुए आलुओं में मिला दो। परांठे नहीं बनेंगे, वेजिटेबिल कटलेट बना देना।"

फिर उसने फ्रिज खोलकर देखा—सब कुछ था। जब वह कॉलेज जाती थी तो कुन्दन का लंच ऑफिस जाता था, पर आजकल वह लंच के लिए घर ही आता है।

पहली तारीख़ ! लंच के लिए कुन्दन आया। जब भी वह घर आता, एक बार सारे घर का चक्कर लगाता। इस नई साज-सज्जा को हर एंगिल से देखता...और उसके चेहरे पर एक सन्तोषमय, गर्वयुक्त उल्लास चमकने लगता। कभी-कभी इसी उल्लास में रमा को बांह में भरता हुआ कहता, "यू आर रियली वंडरफुल !" यों खुले में चूमने की मर्यादा वह तोड़ नहीं पाया था, इसी से केवल उसे दबाकर छोड़ देता।

पूरा चक्कर लगाकर बोला, "आई थिंक एवरीथिंग इज़ इन ट्यून। क्यों ?"

कलफ़ लगा नैपकिन फड़फड़ाता हुआ उसकी गोद में फैल गया।

"अब कोई आए, मुझे चिन्ता नहीं। पांच तारीख़ को डायरेक्टर आ रहे हैं। मैं इस बार एक बड़ी पार्टी घर पर ही करूंगा।"

रमा खाती भी जा रही थी और उसकी प्लेट का ध्यान भी रख रही थी। जो चीज़ ख़त्म हो जाती, रख देती।

"बस यार, वो रोब फटकना है कि डायरेक्टर की नज़रों में जम जाऊं ...एक बार ये लोग इम्प्रेस हो जाएं तो रास्ता साफ़ है। डॉ. फ़िशर तो जब

भी कोई मौक़ा आएगा, मेरे फ़ेवर में ही राय देंगे।''

रमा कुन्दन के बच्चों-जैसे पुलकमय आवेश पर मन्द-मन्द मुस्कराती रही।

''मेम साहब, आपका फ़ोन है।''

''किसका है ? बोलो बाद में करे। मेम साहब इस समय लंच ले रही हैं।''

कुन्दन इस समय रमा को वे सारी बातें सुनाना चाहता था, जो आज उसके और फ़िशर के बीच हुई थीं। कितने स्पष्ट थे सारे संकेत ! फिर भी वह अपने अनुमानों का रमा से समर्थन करा लेना चाहता था।

''कॉलेज से मिसेज़ बर्मन का है।'' बैरा लौटने लगा।

''अरे, ठहरो !'' और रमा एकदम उठ खड़ी हुई।

बातें शुरू हुईं तो वह भूल ही गई कि कुन्दन खाने की मेज़ पर बैठा है और वह खाना बीच में ही छोड़कर आई है।

''अरे डार्लिंग, आओ न ! तुम औरतों का भी बस एक बार चरखा चल जाए तो ख़त्म ही नहीं होता।''

रमा लौट ही रही थी, ''चरख़ा क्या, कोई इतने अपनेपन से बुलाए तो मैं ठीक से बात भी न करूं ! यह भी कोई बात हुई भला !''

''अच्छा-अच्छा, अब अपना खाना ख़त्म करो।''

''तुम्हारा हो गया तो तुम उठो न !''

''नो...नो, यह कैसे हो सकता है भला !''

खाने के बाद कॉफ़ी लेकर, ईज़ी चेयर पर आराम करते हुए कुन्दन ने सिगरेट सुलगा ली और गोल-मोल छल्लों के रूप में धुआं उगलता रहा। फिर रोज़ की तरह पांच मिनट के लिए आंखें मूंद ली। रमा अख़बार पलटने लगी।

''अब चलें।'' झटके से कुन्दन उठ खड़ा हुआ।

कोट उठाया तो तनख्वाह की याद आई। भीतर की जेब से नोट के दो बंडल निकाले—एक बड़ा, दूसरा छोटा।

''अरे, यह क्या, तनख़्वाह ले आए ? आज क्या पहली तारीख़ हो गई ?'' रमा को आजकल तारीख़ और दिनों का कुछ ख़याल ही नहीं रहता।

''ले आया, बैरा और ख़ानसामा के हैं। अस्सी, अस्सी और सौ।''

छोटा बंडल बढ़ाते हुए कुन्दन ने कहा। रमा ने बंडल ले लिया।

"और यह तुम्हारा है," फिर ज़रा-सा झुककर बोला, "अब जो मुनासिब समझो, इस गुलाम को पान-सिगरेट के लिए दे देना।" और हंस पड़ा। रमा भी मुस्करा दी।

"बा...बाई..." और लाल बजरी की सड़क पर तैरती हुई कुन्दन की कार रमा को वहीं छोड़कर आगे चली गई।

□□□

आशा है, आपको यह पुस्तक रुचिकर लगी होगी। आपकी साहित्यिक अभिरुचि के अनुकूल साहित्य की कुछ श्रेष्ठ पुस्तकों का परिचय यहाँ दे रहे हैं। इनके लेखक हिन्दी के लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। आशा है, इनमें से कुछ पुस्तकें आप अवश्य पढ़ना चाहेंगे।

इनमें अपनी पसन्द की पुस्तकें मंगवाने के लिए कृपया हमें आदेश दें। विस्तृत जानकारी के लिए सूचीपत्र मंगवाएँ।

शब्दकोश : कोश : शिक्षा

राजपाल हिन्दी शब्दकोश डॉ. हरदेव बाहरी 210.00, शिक्षार्थी हिन्दी-अंग्रेज़ी शब्दकोश डॉ. हरदेव बाहरी 195.00, राजपाल अंग्रेज़ी-हिन्दी शब्दकोश डॉ. हरदेव बाहरी 210.00, भारतीय संस्कृति कोश लीलाधर शर्मा पर्वतीय 450.00, राजपाल साहित्यिक सुभाषित कोश हरिवंश राय शर्मा 300.00, राजपाल साहित्यिक मुहावरा-कोश हरिवंश राय शर्मा 200.00, शब्दार्थ-विचार कोश आचार्य रामचंद्र वर्मा 350.00, शब्द-परिवार कोश डॉ. बदरीनाथ कपूर 150.00, राजपाल पारिभाषिक शब्दकोश डॉ. हरदेव बाहरी 400.00

विश्वकोश : संदर्भ-ग्रंथ

विश्वकोश-I (पृथ्वी : आकाश : खनिज) डॉ. बालकृष्ण 100.00 विश्वकोश-II (आविष्कार : खोज) डॉ. बालकृष्ण 100.00, विश्वकोश-III (जीव जंतु : पेड़-पौधे) डॉ. बालकृष्ण 100.00, विश्वकोश-IV (देश और निवासी) डॉ. बालकृष्ण 100.00, सुगम विज्ञान-विश्वकोश डॉ. बालकृष्ण 100.00, अंतर्राष्ट्रीय व्यक्ति-कोश विश्वमित्र शर्मा 250.00, नोबेल पुरस्कार-विजेता साहित्यकार राजबहादुर सिंह 200.00

उपन्यास

मानस का हंस (पुरस्कृत) अमृतलाल नागर 190.00, नाच्यौ बहुत गोपाल (पुरस्कृत) अमृतलाल नागर 175.00, खंजन नयन (पुरस्कृत) अमृतलाल नागर 125.00, बिखरे तिनके (पुरस्कृत) अमृतलाल नागर 75.00, अग्निगर्भा अमृतलाल नागर 80.00, वयं रक्षाम : आचार्य चतुरसेन 200.00, वैशाली की नगरवधू आचार्य चतुरसेन 200.00, सोना और खून : भाग-1 आचार्य चतुरसेन 100.00, सोना और खून : भाग-2 आचार्य चतुरसेन 100.00, सोना और खून : भाग-3 आचार्य चतुरसेन 100.00, सोना और खून : भाग-4 आचार्य चतुरसेन 100.00, कब तक पुकारूं (पुरस्कृत) रांगेय राघव 200.00, दिल्ली दूर है (व्यास सम्मान से सम्मानित) डॉ. शिवप्रसाद सिंह 300.00, कुहरे में युद्ध (व्यास सम्मान से सम्मानित) डॉ. शिवप्रसाद सिंह 150.00, औरत (व्यास सम्मान से सम्मानित) डॉ. शिवप्रसाद सिंह 125.00, अपने खिलौने भगवतीचरण वर्मा 60.00, आखिरी दांव भगवतीचरण वर्मा 45.00, थके पांव भगवतीचरण वर्मा 50.00, समुद्र में खोया हुआ आदमी कमलेश्वर 40.00, एक सड़क सत्तावन गलियाँ कमलेश्वर 60.00, तीसरा आदमी कमलेश्वर 30.00, काली आंधी कमलेश्वर 50.00, काके लागू पाँव डॉ. भगवतीशरण

मिश्र 350.00, पीताम्बरा डॉ. भगवतीशरण मिश्र 300.00, पुरुषोत्तम (पुरस्कृत) डॉ. भगवतीशरण मिश्र 300.00, गोविन्द गाथा डॉ. भगवतीशरण मिश्र 200.00, जलते बुझते लोग (एक ही जिल्द में तीन उपन्यास) अमृता प्रीतम 125.00, राज राजेश्वर राजेन्द्र मोहन भटनागर 35.00, नीले घोड़े का सवार (पुरस्कृत) राजेन्द्र मोहन भटनागर 250.00, युगपुरुष अम्बेडकर राजेन्द्र मोहन भटनागर 200.00, जंगल के फूल राजेन्द्र अवस्थी 150.00

श्रेष्ठ अनूदित उपन्यास

चतुरंग (एक ही जिल्द में चार उपन्यास) बिमल मित्र 150.00, ययाति (पुरस्कृत) वि. स. खाण्डेकर 175.00, कोणार्क (पुरस्कृत) प्रतिभा राय 175.00, द्रौपदी (पुरस्कृत) प्रतिभा राय 150.00, एक गधे की आत्मकथा कृश्न चंदर 90.00, अमृता कमलदास 60.00

मेरी प्रिय कहानियाँ

मेरी प्रिय कहानियाँ (पुरस्कृत) भगवतीचरण वर्मा 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ (पुरस्कृत) रांगेय राघव 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ मोहन राकेश 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ राजेंद्र यादव 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ कमलेश्वर 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ फणीश्वरनाथ 'रेणु' 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ यशपाल 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ भीष्म साहनी 65.00, मेरी प्रिय कहानियाँ मन्नू भण्डारी 65.00

कहानी : हास्य-व्यंग्य

समग्र कहानियाँ कमलेश्वर 400.00, अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियाँ अज्ञेय 300.00, मोहन राकेश की सम्पूर्ण कहानियाँ मोहन राकेश 250.00, एक दिल हज़ार अफ़साने (नागर की सम्पूर्ण कहानियाँ) अमृतलाल नागर 400.00, नवाबी मसनद अमृतलाल नागर 35.00, भारत पुत्र नौरंगीलाल अमृतलाल नागर 35.00, जादू की सरकार शरद जोशी 95.00, कोहरा कमलेश्वर 60.00, सत्यजित राय की कहानियाँ 90.00

दर्शन : धर्म

भारतीय दर्शन (दो खण्ड) डॉ. राधाकृष्णन् 700.00, उपनिषदों का सन्देश डॉ. राधाकृष्णन् 125.00, गौतम बुद्ध : जीवन दर्शन डॉ. राधाकृष्णन् 60.00, महाभारत कथा अमृतलाल नागर 150.00, सत्य की खोज डॉ. राधाकृष्णन् 125.00, भारतीय संस्कृति : कुछ विचार डॉ. राधाकृष्णन् 80.00

नाटक : एकांकी

मोहन राकेश के सम्पूर्ण नाटक सं. नेमिचंद जैन 300.00, आषाढ़ का एक दिन (पुरस्कृत) मोहन राकेश 50.00, पैर तले की ज़मीन मोहन राकेश 50.00

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110 006